सांझ

[राजस्थानी भाषा में रचित प्रकृति काव्य]

लेखक
नारायणसिंह भाटी

सम्पादक
गणपति चन्द्र भंडारी

राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थान पाठ्य प्रकाशन
जोधपुर

वितरक
राजस्थानी ग्रन्थागार
पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता,
सोजती गेट के बाहर, जोधपुर

संस्करण १९८३

मूल्य - पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक :
शुभदा प्रिण्टर्स
(जोधपुर)

भूमिका

"साँझ श्री नारायणसिंह भाटी के द्वारा रचित एक प्रकृति-काव्य है। साँझ खण्ड-
ाव्य के विस्तार के बावजूद कथानक पर अवलम्बित होने के बदले, सर्वथा भावात्मक

तरह की विशुद्ध प्रकृति-कविता हिन्दी में भी दुर्लभ है।"

—प्रो० नलिन विलोचन शर्मा

ाष्ट है कि प्रकृति काव्य के क्षेत्र में साँझ की रचना एक उल्लेखनीय घटना है जो
ाहित्य जगत के समक्ष प्रकृति-काव्य का एक नया स्वरूप प्रस्तुत करती है।

प्रकृति-काव्य की परम्परा

प्रकृति' शब्द की दार्शनिको और विद्वानो ने विभिन्न व्याख्याएँ की हैं परन्तु सामान्य
अर्थ मे मानव-कृत से इतर जो कुछ भी है वह 'प्रकृति' है, यहाँ तक कि मनुष्य स्वय
प्रकृति' है और उसका जीवन भी मूलत प्रकृति पर आश्रित है। अत मनुष्य और
प्रकृति का सम्बन्ध सहज है—उसके प्रति मनुष्य का आकर्षण स्वाभाविक है।

सस्कृति 'सस्कार' है, जीवन की सहजता मे सशोधन है; अत सहज जीवन की
विरोधिनी है। इसलिए ज्यो-ज्यो सभ्यता और सस्कृति का विकास हुआ मनुष्य
का जीवन सहजता से कृत्रिमता की ओर बढता गया और वह प्रकृति मे दूर हटता
गया यहा तक कि आज के तथाकथित 'समुन्नत' और 'सुसस्कृत' नागरिक जीवन
मे प्रकृति के दर्शन अधिकाश म ड्राईग-रूम की सजावट के चित्रो मे ही होते हैं
और मनुष्य स्वय भी 'मनुष्य' कम और 'यत्र' अधिक रह गया है। मनुष्य और
प्रकृति के सम्बन्धो की यह 'प्रगति' काव्य मे भी लगभग इसी रूप मे प्रति-
बिम्बित हुई है।

वेद ससार के प्राचीनतम साहित्य माने जाते हैं। वैदिक ऋचाओ का कवि
प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध है, उसके माधुर्य से उल्लसित है, उसकी रहस्यमयी
विराटता से विस्मित है और उसके उग्र रूप से भयभीत भी। विस्मय और
भय ने सम्भवत उसमे सूर्य, अग्नि, पवन, मेघ जैसी प्राकृतिक शक्तियो मे देवत्व की
कल्पना जगाई और वह इन से अपनी सुख-सम्पन्नता की प्रार्थनाएँ करने लगा।
यह देवत्व वास्तव मे प्राकृतिक शक्तियो मे मानव जीवन की अनुरूपता का ही आरोप
था क्योकि ये देवता सत् और असत् दोनो प्रवृतियो से युक्त थे। वे आहुति से
प्रसन्न हो कर आराधको का कल्याण भी करते थे और रुष्ट होने पर उन्हें कष्ट

भी देते थे। संक्षेप मे वैदिक साहित्य मे प्रकृति को जीवन की सृजक और नियामक शक्ति के रूप मे देखा गया। इन कवियो की दृष्टि लगभग प्रकृतिवादी *मानी जा सकती है। अज्ञेय जी के अनुसार वैदिक कवि इन प्राकृतिक शक्तियो को* सदासद् से परे मानते हैं और इन मे प्रकृति के प्रति 'विस्मय' का ही भाव मुख्य है। "प्राकृतिक शक्तियो को वह देवता मनता था, किन्तु देवता होने से ही वे अनुकूल हो जायेगी, ऐसा उसका विश्वास नही था, उनकी अनुकूलता के लिए वह प्रार्थी था। कहा जा सकता है कि उसकी दृष्टि मे शक्तिया सद्-असद् से परे थी किन्तु उन्हे — बनाया जा सकता था।

> यथा द्यौश्च पृथ्वी च न बिभीतो न रिष्यत.
> एवा मे प्राण मा बिभेः।

यह प्रार्थना करने वाला व्यक्ति जहा यह कामना करता था कि प्रकृति की शक्तियो के प्रति उस के प्राण भय रहित हो, वही वह यह भी मानता था कि वे शक्तियां भी राग-द्वेष से परे हैं।"[1]

मेरे विनम्र मत मे जिसे प्रार्थना द्वारा अनुकूल बनाया जा सके उस मे बिना प्रार्थना के प्रतिकूल आचरण की सभावना भी विद्यमान है। भला जो राग द्वेष से परे है— 'वीतराग' है— वह किसी के भी अनुकूल या प्रतिकूल कैसे हो सकता है ? वह तो नितात उदासीन होता है। प्रार्थना और प्रशसा से प्रसन्न होना और बुराई से *अप्रसन्न होना मानवीय व्यवहार की विशेषता है जिसकी कल्पना मनुष्य ने* ईश्वर और देवताओ मे भी करली हो तो कोई आश्चर्य नही।
आगे चल कर 'ब्रह्म' की कल्पना के साथ प्रकृति मे देवत्व की भावना क्षीण हो गई क्योंकि सारी सृष्टि 'ब्रह्म' का ही विस्तार मानी जाने लगी यद्यपि जनसाधारण मे तो आज भी सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियो मे देवत्व की भावना विद्यमान है।

जैन और बौद्ध साहित्य प्राय धर्म-प्रधान साहित्य हैं और ये दोनो धर्म निवृत्ति-प्रधान हैं। भौतिक जगत के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना ही इनका लक्ष्य होने से और साहित्य के अधिकाश रचयिता साधु-वर्ग के विरक्त पुरुष होने से उनमे प्रकृति के आकर्षण और उल्लास की अपेक्षा करना ही व्यर्थ है। हा, इन्होने अपनी धार्मिक मान्यताओं को प्राकृतिक व्यापारो मे प्रतिबिम्बित देखने का जब तब अवश्य प्रयत्न

---

[1]हिन्दी साहित्य - एक आधुनिक परिदृश्य पृष्ठ ११८

किया है और उसे उपदेशक के रूप मे ग्रहण किया है। प्रकृति के साथ भावात्मक तादात्म्य का उन मे लगभग अभाव ही है। इनका अधिकाश साहित्य पालि, प्राकृत और अपभ्र श म है। मध्यकाल की इन भाषाओ म चरित काव्यो के रूप मे कतिपय महाकाव्यो का निर्माण भी हुआ और मुक्तक-काव्यो का भी। प्रबध-काव्यो मे प्रसगानुसार कही कही वन, सरोवर, प्रात, सध्या, बसत आदि का वर्णन मिलता है जो या तो पृष्ठभूमि के रूप मे है अथवा उद्दीपन रूप मे।

जैनेतर प्राकृत- काव्या मे प्रवरसेन रचित 'सेतुबध' को श्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। इसके पूर्वार्द्ध म सुन्दर प्रकृति–वर्णन मिलता है जो महाकाव्य की आवश्यकता के अनुरूप है। डा० हरदेव बाहरी ने इसे कवित्वपूर्ण और व्यापक बताया है। इस का रचना-काल दूसरी से पाचवी शताब्दी ई० के मध्य माना जाता है। इसी प्रकार एक अ य प्रपूर्ण प्रबध-काव्य 'गौड वहो' म भी कन्नौज से बगाल तक के प्राकृतिक दृश्यो का एवम् ऋतुओ का मार्मिक वर्णन मिलता है। इसके रचयिता 'वप्पइराग्र' (वाक्पतिराज) माने जाते हैं। मुक्तक—काव्यों म सातवाहन (हाल) रचित 'गाहा सतसई' की कतिपय गाथाओ म भी प्राकृतिक स्थानो का, ऋतुओ का पशु-पक्षियो की प्रकृति और क्रीडाओ का एवम् मेघ, विद्युत, पवन आदि का जैसा मार्मिक वर्णन हुआ है वैसा अन्य सतसइयो मे मिलना दुर्लभ है। अपभ्र श काव्यो म भी प्रकृति-वर्णन की लगभग वैसी ही स्थिति है। केवल अब्दहमाण कृत 'सदेश रासक' म जो ऋतु-वर्णन मिलता है, वह साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। सक्षेप मे प्राकृत और अपभ्र श के साहित्य मे प्रकृति वर्णन प्राय महाकाव्या की आवश्यकतानुरूप दृश्य, काल अथवा ऋतुवर्णन के रूप म ही उपलब्ध होता है। कुछ मुक्तको मे प्रकृति वर्णन के सु दर उदाहरण मिलते हैं परन्तु प्रकृति कवि की न तो साध्य है, न उसके साथ उसका तादात्म्य ही देखने को मिलता हैं। इन काव्यो मे प्रकृति का उद्दीपक, उपदेशक अथवा अलकृत रूप ही मुख्य है।

-12230

संस्कृत साहित्य मे प्राकृतिक दृश्यो का सूक्ष्म निरीक्षण और मार्मिक चित्रण मिलता है। आदि कवि की रामायण म, कविकुल-गौरव कालिदास के काव्यो मे, भवभूति के उत्तर-रामचरित और बाण की कादम्बरी मे प्राकृतिक सौंदर्य का अनुपम और व्यापक चित्रण मिलता है। वे प्राकृतिक वस्तुओ की परिगणना मात्र नही करते, उनके पारस्परिक सम्बन्धो को भी देखते है और सपरिवेश सम्पूर्ण दृश्य का चित्राकन करते हैं। प्रकृति उनके हृदय मे रमी हुई है। यही कारण है कि कालिदास के मेघदूत का प्रकृति चित्रण इतना मार्मिक और मनोहारी है। 'मेघदूत' और 'अभिज्ञान शाकु तल' मे प्रकृति और मनुष्य की आत्मीयता अनुपम हैं। कण्व के आश्रम के पेड,

ऐसा तादात्म्य अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । 'उत्तर रामचरित' में प्रकृति का कोमल और करुण रूप अंकित हुआ है तो बाण की कादम्बरी में उसकी रंगीनी और उसके रूप की विविधता के मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। फिर भी संस्कृत कवियों को 'प्रकृतिवादी' नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे उसे न तो जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं और न उससे कोई संदेश ही प्राप्त करते हैं। कालिदास से भवभूति तक के कवि उसके कुछ समीप अवश्य हैं परन्तु बाद के कवियों का प्रकृति-वर्णन तो लगभग परम्परा-पालन मात्र ही रह गया है । इस विषय में अज्ञेयजी का मत भी अवलोकनीय है —

"कालिदास का प्रकृति-प्रेम वाल्मीकि से कम हार्दिक नहीं है। न उनका काव्य आलम्बन के रूप में प्रकृति को आदि कवि की रचनाओं से कम महत्व देता है। फिर भी उस में वाल्मीकि की सहजता नहीं है। न वैदिक कवि का विस्मय-भाव ही है। कालिदास की प्रकृति अपेक्षया अलंकृत है। कवि जितना प्रकृति से परिचित है, उतना ही प्रकृति-संबंधी अनेक कवि-समयों से भी - अर्थात वह अपने काव्य की परम्परा से भी परिचित है और उस परिचय की अवज्ञा नहीं करता।"[1]

हिन्दी काव्य का आदिकाल शौर्य-प्रदर्शन और युद्धों का काल था। कवि स्वयं भी योद्धा थे और उनका प्रधान लक्ष्य योद्धाओं को क्षात्र-धर्म निर्वाह की प्रेरणा देना एवम् आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना था। ऐसे काव्यों में प्रकृति-चित्रण के अवसर ही कम थे, अतः यत्र-तत्र पृष्ठभूमि के रूप में अथवा श्रृंगारिक प्रसंगों में उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण की परम्परा का ही थोड़ा बहुत निर्वाह हुआ। मध्ययुग में भी प्रकृति-चित्रण का गौण स्थान ही रहा। भक्त कवियों की रचनाओं में प्रकृति या तो प्रभु की माया बन कर रह गई है अथवा उसकी अभिव्यक्ति कबीर और तुलसी ने प्रकृति में या तो उपदेशक के दर्शन किये हैं अथवा उसका उपयोग व्यापक रूप में अप्रस्तुत विधान के लिए किया है। उदाहरणार्थ,

हरिया जाणे रूखड़ा, उस पाणी का नेह ।
सूखा काठ कि जाणई, कबहूं बूठा मेह ॥
माली आवत देख कर, कलियाँ करी पुकार ।
फूले फले विन लिये, कालिह हमारी बार ॥ — कबीर

दामिनि दमक रह न घन माहीं । खल के प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बूंद अघात सहहिं गिरि ऐसे । खल के बचन संत सह जैसे ॥

1. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य—अज्ञेय, पृ० १६०

मानस रूपक से प्रकृति का व्यापक चित्रण होते हुए भी उसे राम-कथा के उपमान रूप में ही ग्रहण किया गया है और प्रयाग वर्णन में यदि संगम का सुरम्य दृश्य-वर्णन ही लक्ष्य है तो उसे भी कवि एक राजा के रूप में ही देखता है। कृष्ण-भक्त कवियों में भी प्रकृति प्रायः उद्दीपन अथवा उपमान रूप में ही गृहीत हुई है। भक्त कवियों में प्रकृति के प्रति आकर्षण अवश्य है, और उन्होंने उसका आलम्बन रूप में ही वर्णन किया परन्तु उनकी मनोवृत्ति या तो उपदेश देने की रही है अथवा उसे आराध्य के रूप और प्रभाव वर्णन के साधनरूप में ग्रहण करने की। सूफी कवि जायसी में भी प्रकृति वर्णन मुख्यतः उद्दीपन रूप में ही हुआ है यद्यपि उन्होंने प्रकृति और मनुष्य में साहचर्य भावना की प्रतिष्ठा भी की है। सूफियों और संतों में उपास्य के रूप का आग्रह न होने से प्रकृति का रूप-वर्णन करुण और अति-प्राकृत की ओर झुका है। वैष्णव भक्तों में प्रकृति से प्रेरणा लेने के कारण कुछ प्रकृति-वादी भावना की झलक अवश्य मिलती है पर वे उसमें किसी विश्व नियामक अज्ञात शक्ति के दर्शन नहीं करते और यदि प्रकृति उन्हें आह्लादित करती भी है तो आराध्य की अभिव्यक्ति होने के कारण—सारे जगत के 'सिया-राम मय' होने के कारण।

रीतिकाल में प्रकृति को शास्त्रीय पद्धति में बांध कर केवल उद्दीपन रूप—अथवा उपमान-रूप में ही सिमिट जाना पड़ा। सेनापति जैसे प्रकृति प्रेमी कवि का सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण भी जैसे खड़े रहने के लिए उद्दीपन की शास्त्रीय बैसाखी आवश्यक समझता है। यह मनुष्य और प्रकृति के संबंध में क्रमागत शैथिल्य का ही द्योतक है। भारतेंदु-युग में हम प्रकृति के प्रति कवियों की दृष्टि में कुछ परिवर्तन आता देखते हैं फिर भी प्रधानता परम्परा पालन की ही है। गंगा और यमुना-वर्णन में भारतेन्दु ने प्रकृति को आलम्बन रूप में अवश्य ग्रहण किया है परन्तु उनकी रुचि उसके सौंदर्य से अभिभूत होने के बदले नाना प्रकार की उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं खोजने में ही अधिक रमी है। द्विवेदी युग के प्रारम्भ में श्रीधर पाठक और राम नरेश त्रिपाठी के काव्य में हमें प्रकृति के प्रति रोमांसिक भावना की झलक अवश्य मिलती है। प्रकृति स्वयं उनके आह्लाद का विषय बनी है परन्तु प्रधानता प्राकृतिक वस्तुओं की परिगणना की ही है। मैथिली शरण गुप्त और हरिऔध ने अपने प्रबंध काव्यों में प्रकृति के अनेक चित्र अंकित किये हैं परन्तु वे भी अधिकांश में परम्परा का पालन ही हैं।

छायावादी कवियों ने प्रकृति को व्यक्तित्व प्रदान किया और उसके सजीव मनोरम चित्र अंकित किये। हिंदी कविता में प्रकृति का सर्वाधिक आकर्षण इन्हीं कवियों में मिलता है। इन कवियों पर अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी रोमांसिक कवियों का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। इन अंग्रेजी रोमांसिक कवियों को प्रकृतिवादी माना और मानव के प्रति उसे सहानुभूति पूर्ण पाया। वर्ड्सवर्थ का हृदय 'डफोडिल्स' के साथ साथ नाचने लगता है और वह मनुष्य को प्रकृति के सौंदर्य का विनाशक मानता है। शैली 'स्काइलार्क' से आनंदानुभूति की भीख



मागता है। इन कवियों ने प्रकृति में किसी व्यापक नियामक शक्ति के दर्शन भी किये। आगे के कवियों में प्रकृति आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के माध्यम रूप में भी गृहीत हुई। भारतीय छायावाद में कवि का प्रकृति के साथ ऐसा तादात्म्य तो दिखाई नहीं देता पर वह उसके सौंदर्य और माधुर्य में अभिभूत अवश्य है। उसने प्रकृति में मानवीय भावनाओं और व्यापारों का प्रतिबिम्ब व्यापक रूप से देखा है। पंत के लिए प्रकृति प्रेरणा का स्रोत भी है और मानव-सहचरी भी। जहाँ व उसके सहज सौंदर्य से प्रभावित हैं, प्रसाद, निराला और महादेवी में प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण अधिक है। महादेवी प्राकृतिक सौंदर्य के पीछे किसी अज्ञात प्रिय की कल्पना भी करती है और उसके विरह की अनुभूति भी। इसी से वे रहस्यवादी कवयित्री मानी जाती हैं। इन में पंत अंग्रेजी रोमांटिक कवियों के प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के अधिक निकट हैं यद्यपि 'युगांत' के बाद की रचनाओं में उनका यह दृष्टिकोण लुप्त हो गया है। इस संदर्भ में अज्ञेय जी के विचार भी अवलोकनीय हैं– 'पश्चिमी काव्य के परिचय से भारतीय कवि एक बार फिर प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता की ओर आकृष्ट हुआ। कहा जा सकता है कि इसी परिचय के आधार पर वह स्वयं अपनी परम्परा को नयी दृष्टि से देखने लगा और उसके सार तत्वों को नया सम्मान देने लगा। निस्सन्देह अनुकरण भी हुआ, परन्तु जो केवल मात्र अनुकरण था वह कालान्तर में उसी गौण पद पर आ गया जो उसके योग्य था। उषा सुन्दरी का मानवी रूप छायावादियों का आविष्कार नहीं था, और उसकी परम्परा ऋग्वेद तक तो मिलती ही है। किन्तु जब कवि ने छाया को भी मानवी आकृति देकर पूछा–

> कौन, कौन तुम, परिहत वसना
> म्लानमना भू-पतिता सी ?

तब उसके अवचेतन में वैदिक परम्परा उतनी नहीं रही होगी जितना अंग्रेजी रोमांटिक काव्य जिसमें प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण साधारण बात थी। किन्तु नयापन केवल इतना नहीं था – पुरानपन का नया संवार भर नहीं था बल्कि मानवीकरण केवल विषयाश्रित नहीं था। प्रकृति के मानवीकरण क विषयीगत रूप और भी अधिक महत्त्वपूर्ण था।

मानवीकरण का यह पक्ष वास्तव में वैयक्तिकीकरण का पक्ष था। यही तत्त्व है जिसने प्रकृति-वर्णन को प्राकृतिक अभिप्रायों के वर्णन से अलग कर के काव्योचित दृष्टि का रूप दे दिया।"[1]

नयी कविता में प्रकृति का उन्मुक्त रूप दिखाई नहीं देता–वह यथार्थवादी औ

[1] हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य–पृ० १६३

ाभाववादी रूप म ही गृहीत हुई है। उसमें आधुनिक जीवन की कुण्ठा मुख्य और
ावृति गौण हो गई। नयी कविता मे प्रकृति-चित्रण पर प्रकाश डालते हुए अज्ञेय
ी लिखते है —

'नयी काव्य-प्रवृत्तिया को सामने रखकर एक अर्थ मे कहा जा सकता है कि प्रकृति-
काव्य अब वास्तव म है ही नही। एक विशिष्ट अर्थ म यह भी कहा जा सकता है
कि छायावादी काव्य मर गया है तो उसके साथ ही प्रकृति काव्य की भी अन्त्येष्टि
हो चुकी है किंतु ऊपर के निरूपण से यह स्पष्ट होना चाहिए कि ऐसा एक विशिष्ट
अर्थ म ही कहा जा सकता है और यह विशेषता नय प्रकृति-काव्य का शील-निरूपण
करने मे सहायक होती है।"

"छायावाद के लिए प्रकृति मानवेतर यथार्थ का पर्याय नही थी, मानव के साथ
मानव निर्मित को छोडकर शेष जगत् भी उसकी प्रकृति नही था। बल्कि इस शेष म
जो सुन्दर था, जो सौष्ठव-सम्पन्न था, जो रूप-सम्पन्न था, वही उसका लक्ष्य था।
नयी कविता मे रूप का आग्रह कम नही है, पर उसने सौष्ठव वाले पक्ष को छोड
दिया है, तद्वता पर ही वह बल देती है। इतना ही नही, मानव-निर्मित को भी
उसस अलग नही किया जाता क्योकि ऐसी असम्पृक्त प्रकृति अब दीखती ही कहाँ है।'[1]

राजस्थानी के प्रारंभिक साहित्य मे भी धर्म, वीरता और शृंगार की प्रधानता है।
अत प्रकृति-वर्णन प्रसग-वश हुआ है। 'बसत—विलास' जैसे 'फागु' काव्य भी शृंगार
प्रधान ही हैं और इन मे प्रकृति केवल उद्दीपन रूप मे ही गृहीत हुई है। वेलि
साहित्य म भी प्रकृति वर्णन पृष्ठभूमि के रूप में अथवा उद्दीपन रूप म ही हुआ है।
'ढोला मारू' में प्रसगवश मरु प्रदेश की प्रशसा और बुराई के कतिपय दोहे मिलते है
जिनम प्रकृति पात्र विशेष का आलम्बन बनी है पर यह वर्णन सहज है। अत ऐसा
प्रतीत नही होता कि प्रकृति सौन्दर्य से उल्लसित होकर ही कवि का हृदय नाच उठा
हो। फिर भी प्रशसात्मक दोहों मे उसके प्रकृति-प्रेम की झलक अवश्य मिलती हैं,
उदाहरणार्थ—

"बाजरिया हरियाळिया, बिचबिच बेला फूल।
जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल॥

ढोला मारू जैसे प्रेमाख्यानों म प्रकृति और मानव का सौहार्द भी चित्रित हुआ हैं,
मारू का सदेशा 'कुरजा' नामक (क्रौंच) पक्षी ही ढोला तक पहुँचाता है।

---

[1]हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य-पृ० १६७

स्फुट मुक्तक साहित्य-विशेषकर दोहों, सोरठों में भी प्रकृति का उद्दीपन-रूप ही मुख्य है परन्तु कुछ ऐसे दोहे भी हैं जो स्थानगत अथवा वस्तुगत विशेषताओं का वर्णन करते हैं और इनमें प्रकृति ही कवि का आलम्बन बनी है; यथा—

> टूंका टूंका केतकी, पग पग माथै जाय ।
> आबू री छब देखनां, ग्रौर न आवै दाय ॥
> आभ गडै, बीजा ग्रडै, मोरां घरै मलार ।
> कामण घरा धपाड़वा, आयो मेह उदार ॥

परन्तु यहाँ भी प्राय प्राकृतिक-पदार्थों की परिगणना मात्र है, कहीं कहीं मानवीय भावों एवम् स्नेह-सम्बन्धों का प्रकृति में अवश्य दर्शन किया गया है। प्रकृति के भावाश्रित संश्लिष्ट चित्र प्राचीन राजस्थानी साहित्य में भी नगण्य ही हैं। ऐसे चित्र तो हिन्दी की भांति राजस्थानी को भी आधुनिक युग की देन हैं। आधुनिक राजस्थानी में विशुद्ध प्रकृति वर्णन की प्रथम महत्वपूर्ण कृति श्री चन्द्रसिंह कृत 'बादळी' है। पश्चिमी राजस्थान में वर्षा ऋतु देश के अन्य भागों की अपेक्षा विशेष आकर्षक होती है क्योंकि थोड़े-थोड़े अन्तर से हल्की-हल्की वर्षा होने से न तो वह परेशान करने वाली होती है और न वगान-आसाम सा प्रलयंकर दृश्य प्रस्तुत करने वाली। जेठ-वैशाख की भीषण गरमी के बाद आषाढ़-सावन की एकाध अच्छी बरसात और शेष दिनों में हल्की फुहारें मरु-प्रदेश के रेतीले भागों में बड़ा नयनाभिराम दृश्य उपस्थित करती हैं। चन्द्रसिंह का मन-मयूर इसी दृश्य को देखकर नाचा है और प्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन से उद्भूत आनंद की अभिव्यक्ति ही उनकी 'बादळी' है। इसके १३० दोहों में भीषण गरमी से संतप्त मरुधरा द्वारा बादळी का आव्हान मेघों के विभिन्न आकर्षक रूप, उसके संदेशवाहक एवम् उद्दीपक रूप का तो सुन्दर चित्रण है ही, जीव जगत पर पड़ने वाले वर्षा के अह्लादकारी प्रभाव का भी स्वल्प किन्तु मार्मिक वर्णन है। क्षण-क्षण में अपना रूप परिवर्तित करने वाले मेघों का वर्णन करते हुए कवि ने उन पर मानवीय-भावों का निम्नांकित दोहे में कितना सुन्दर आरोप किया है—

> 'पहरै, बदलै बादली, बदल पहर बदलाय ।
> सूरज-साजन ने सखी, आसी कुण सो दाय ॥''

धरती, सूर्य, मेघ और पशु-पक्षियों के पारस्परिक प्रकृत सम्बन्धों में मानवीय भावनाओं का दर्शन बादली के कवि की अपनी विशेषता है। उसके दोहे एक ओर तो कवि के प्रकृति प्रेम और कल्पना-शक्ति के परिचायक हैं, तो दूसरी ओर वे प्रसादगुण युक्त शैली, अभिव्यक्ति की सहजता और शब्द-योजना के लालित्य से भी सम्पन्न हैं। बिजली की चमक से निम्नांकित वर्णन में कवि द्वारा की गई भावपूर्ण उत्प्रेक्षा देखिए-

'पल पल मे पलका करै, आभै भर्यो उजास ।
जाएो प्रीतम खोज मे, छाएँ बीज प्रकास ।।"

बादली की प्रमुख विशेपता कवि की प्राकृतिक व्यापारो मे भावात्मक सम्बन्धो की उद्भावना और शैली की प्रसाद-गुण-सम्पन्नता है। वह परम्परागत वर्षा-वर्णन से भिन्न मार्मिक प्रकृति-काव्य है। परम्परा का बहिष्कार उसमे नहीं है पर कवि के आकर्पण का केन्द्र प्राकृतिक व्यापार ही है, नायक-नायिका नही। कवि के प्रकृति-प्रेम, उसकी उर्वर कल्पना शक्ति एवम् भापा-शैली की सुन्दरता के परिचायक कतिपय दोहे नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं —

"प्रीतम भेजी बादली, इएा मे मीन न मेख।
बरसएा मिस झूरै खडी, घएा विलल ती देख ।।
चाद छिपायो बादल्या, घरा गमायो धीर ।
सुरगी साडी ऊपरा, ओढ्यो सावल चीर ।।
बूदी लाल ममोलिया, हरियो आगएा खोड ।
ओढी धरती चूनडी, तीजणिया री होड ।।
बएा ठएा आयी बादली, राची धर रग-राग।
चेतन अत चचल हुयो, जड जग उठियो जाग ।।"

शुद्ध प्रकृति-काव्य की इसी परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण काव्य है डा नारायणसिंह भाटी कृत साझ'। साझ' के कवि का आकर्षण भी प्रकृति ही है पर उसकी दृष्टि अधिक व्यापक और सूक्ष्म है एवम् उसकी शैली अधिक लाक्षणिक और प्रौढ। 'बादली' भी मरुधरा की 'बादली है और साझ' भी मरु प्रदेश के एक गाव की सध्या परन्तु 'साझ' का कवि उस की स्थानीयता का साधारणीकरण करके उसे सार्वभौम बनाने म सफल हुआ है। सध्या का अनुगमन करने वाली रात्रि का आभास पाते ही प्रकृति के शयन की तैयारी का जो सश्लिष्ट चित्र भाटीजी ने प्रस्तुत किया है, वह एक ऐसा ही मार्मिक चित्र है।

बेल रे खोले मे धर सीस, कँवला फूल रहया ऊगीज।
पान री लोली सैजा होड, विलमता रहग्या यू बिलमीज ।।
लुभाएाा बाजरिया रा खेत, पयपै पान पान सू बात।
पौढगो वेला बाह पसार, झाकियो डूगर पर सू रात ।।

'साझ' का परिवेश कवि का अपना परिवेश है जिस मे वह जनमा और पला है एव जिसे उसने जिया है। अत उसका चित्रण भी बडा सजीव और सशक्त है। 'बादली' मे हम एसे सशक्त परिवेश-चित्रण के दर्शन नही होते। दूसरे, 'साझ' **समकालीन** युगजीवन के बोध से अविच्छिन्न है। भाटीजी ने एक ओर सध्या-कालीन ग्राम्य जीवन का सूक्ष्म और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर ग्रामीण

जीवन के अभाव और देन में व्याप्त भूख, बेकारी और शोषण भी उनकी पैनी दृष्टि से ओझल नहीं हुए है। 'सांझ' का प्रारम्भ प्रकृति–काव्य के रूप में होता है पर उसकी समाप्ति अभाव ग्रस्त ग्राम्य जीवन के लिए श्रम-जन्य उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना का संदेश देने वाले जीवन-काव्य में होती है। 'सांझ' के प्रारंभिक और अंतिम छंद देखने से यह स्पष्ट हो जाता है—

'हेरी किरण बनड़ी तणों सुहाग, बादली झीणों घूंघट ओट?
धीसरै डावर नैणां लाज, चमकै चोली कोरा गोट।'' (छंद २)
'बता किम बरणूं थन्नै आज, प्रीत रै पाणी रो रंग-राग।
तिरमड़ी पीसी म्हयां लाग, उगणतै जोबनिये रा भाग।'' (छंद १००)
'बिहाणै पोयला पथ पयाण उगूणी ऊगा धरती माय!
कसू बल आंख्यां में भर राग, धड़कता हिवड़ा ने हरखाय!''
'जिकण री गोद्यां में अणमोल, हुंमे है माणस कुल रो भाण।
किरण रा काचा धागा माय सचरै जग रो जीवण पाण॥'' (अंतिम दो छंद)

इस प्रकार 'सांझ' राजस्थानी प्रकृति-काव्य की परम्परा में 'बादली' से आगे की प्रगति का चरण-चिन्ह है। 'सांझ' राजस्थानी प्रकृति काव्य का कीर्ति-स्तम्भ है। एक ही प्राकृतिक घटना पर खंड-काव्य जितने विस्तार वाला ऐसा मार्मिक काव्य हिन्दी में भी दुर्लभ है।

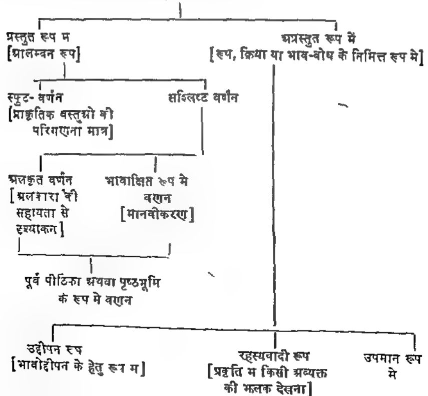
'सांझ' के बाद 'बादली' के यशस्वी कवि चन्द्रसिंह ने 'लू' नामक एक अन्य प्रकृति-काव्य का सृजन कर इस परम्परा को आगे बढ़ाने का स्तुत्य प्रयास किया है। वैसे प्रकृति सम्बधी कतिपय फुटकर कविताएं और गीत अनेक कवियों ने लिखे हैं जिन में अधिकतर मरुभूमि के धोरों, उस की वनस्पति और पशु-पक्षी आदि के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया गया है अथवा प्रकृति में मानवीय–क्रियाकलाप एवम् भावात्मकता के दर्शन किये गये है। कुछ कवियों ने प्रकृति को शिक्षक के रूप में भी देखा है पर 'सांझ' जैसा दूसरा प्रकृति काव्य अभी सामने नहीं आया।

'सांझ' मे प्रकृति–दर्शन का स्वरूप––

प्रकृति काव्यों की परम्परा पर एक विहगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभ्यता के उषाकाल से आज तक सभी युगो के कवियो ने अपने काव्य में प्रकृति को किसी न किसी रूप में अवश्य अपनाया है। जिस युग में मानव जीवन का प्रकृति से जितना घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, उस युग के काव्य में उसका उतना ही मार्मिक चित्रण है। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप अस्तित्व में आने वाले आधुनिक विशालकाय नगरों के जीवन ने मनुष्य को प्रकृति से धीरे धीरे इतना अलग कर दिया कि अब उसे अपने आदिम युगीन मित्र पेड़ पौधो का सहवास प्राप्त करने के लिए

कृत्रिम वाटिकाओ और उपवनो का निर्माण करना पडता है। यह कृत्रिम प्रकृति-निर्माण केवल वृक्षो और लताओ तक ही सीमित नही है, ऐसे भी पार्क मनुष्य ने बनाए है जहा कृत्रिम पर्वतो से कृत्रिम झरने फोड कर जल प्रवाहित किया है और उसे ही सरिता का प्रतिनिधि मानकर सतोष करता रहा है। ऐसे परिवेश मे जीवन बिताने वाले कवियो से सस्कृत कवियो जैसे सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण और सजीव दृश्य चित्रण की अपेक्षा करना बालू मे से तेल निकालने की आशा मात्र है। अत इस युग मे प्रकृति के मार्मिक और भावपूर्ण चित्र वे ही कवि दे सकते हैं जो आज भी छोटे छोटे गाँवो के प्राकृतिक परिवेश मे रहते है अथवा जिन्हे पतजी की भाँति प्राकृतिक वैभव से पूर्ण स्थान पर जनमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। 'साझ' के कवि ने भी अपने जीवन का रस 'मालूणा' गाव मे प्राप्त किया है और उसकी साझ' के विभिन्न चित्रो मे उसी गाव का परिवेश चित्रित है। 'साझ' की सफलता का रहस्य अनुभूति की यही सच्चाई है—उसके कवि ने कल्पना की उडानें भी भरी है पर अपने पैर 'मालूणा' की मिट्टी मे जमाये रखे है।

अपनी परिवेश जन्य परिस्थितियो की भिन्नता के कारण कवियो ने अपने काव्यो म प्रकृति का विविध रूपो मे चित्रण किया है जिसे तालिका के रूप म इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है —



कवि का प्रकृति से जितना लगाव होगा, उतना ही उसका वर्णन सूक्ष्म और सश्लिष्ट होने लगेगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहचर्य को ही प्रेम का आधार माना है, जो उचित ही है। अत. प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र द्वारा दृश्यावन अथवा विम्बग्रहण कराने की क्षमता उसी कवि मे होगी जिसे प्रकृति का साहचर्य प्राप्त है। इस दृष्टि से यत्र-युग मे जन्म लेकर भी 'साझ' का कवि सौभाग्यशाली है कि उसका प्रकृति से घनिष्ट सम्बन्ध बना रहा। इसी से भाटीजी के काव्य मे प्रकृति के सुन्दर सश्लिष्ट चित्र मिलते हैं। यद्यपि सध्या एक प्राकृतिक घटना मात्र है जिसके सौंदर्य की अनुभूति नगर निवासियो को भी हो सकती है, तथापि एक ग्रामवासी सध्या को खुले आकाश मे जिस रगीनी के साथ फूलते और रात्रि मे विसर्जित होते देखता है, वैसा सपूर्ण दृश्य ऊची अट्टालिकाओ से घिरे नगरवासी के लिए दुर्लभ है, विशेषकर सध्याकाल मे होने वाले पेड-पौधो और पशुपक्षियो के क्रियाकलाप के सूक्ष्म अवलोकन के अवसर नगर में कठिनता से ही उपलब्ध होते हैं। भाटीजी ने जीव जन्तुओ एवम् पेड पौधो के सध्याकालीन क्रियाकलापो के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है जो सम्भवतः इस काव्य के श्रेष्ठ अ श हैं। उदाहरणार्थ, संध्या के समय लताओ के कुम्हला कर शिथिल पडने और उनके नीचे की ओर झुक जाने का यह चित्र कितना भावपूर्ण और चित्ताकर्षक है—

> "भवरा झुटपुटिये री वेल
> खुलै वा अन्धारा री आख।
> वेल लाज लचकाणी पड जाय,
> लजाल् सिरकै पल्लो नाग।" (२८)

वृक्ष के आलिंगनपाश मे वद्ध लता देखती है कि अन्धकार (पर-पुरुष) मुझे देखने लगा है, तो वह 'लचकाणी' पड जाती है—लजा जाती है। लचकाणी' शब्द राजस्थानी भाषियो के हृदय पर शर्माने का जो चित्र अ कित करता है वह उसके किसी अन्य पर्याय से सम्भव नही है। मानवीय भावो का प्रकृति पर ऐसा सफल आरोप और हेतु की ऐसी भावपूर्ण उत्प्रेक्षा ही कविकर्म की सार्थकता है। सरोवर के जल मे पडते हुए सध्याकालीन रगीन मेघो के प्रतिबिम्ब का यह भावाक्षिप्त वर्णन भी देखिए—

> "अेकली छाह नहावै नीर,
> लहरा धुपै लहरियो रग।
> साझ री लूटण रूप अथाग
> पवनियो तिरसो वणै तरग।" (५१)

वृक्षो की छाया का एकात मे जलस्नान और सध्या सुन्दरी के रगबिरगे लहरिये का सरोवर मे धोया जाना देख कर रस-लोलुप पवन का मन मचल पडता है और वह

उस स्नानरता सध्या के रूप का पान करने तरग का वेश धारण कर लेता है। तरग पवन से ही उत्पन्न होती है अत इस वास्तविक आधार को पाकर उत्प्रेक्षा सार्थक हो गई है और समूचे दृश्य को कुशल कवि ने शृगारी भावो की जो पृष्ठभूमि प्रदान की है वह वास्तव मे मौलिक और अद्भुत है। ऐसा सुन्दर दृश्याकन ही साझ मे कल्पना वैभव और मार्मिकता का कीर्तिस्तम्भ है।

प्राकृतिक पदार्थों और घटनाओ के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ साथ उनके पारस्परिक सबधो की सुन्दर कल्पना और समूचे चित्र को एक मार्मिक भावभूमि प्रदान करना 'साझ' के कवि की सबसे बडी विशेषता है। कही सध्या के समय लताओ पर लगे पुष्पो के मुर्झाने मे कवि को माँ की वात्सल्यमयी गोद म सिर रख कर झपकी लेते हुए शिशुओ के दर्शन होते है, तो कही सध्या के समय भी न मुर्झाने वाली बेहोनी और कपास के पौधे रूपवती सध्या को देखकर प्रफुल्लित होते दिखाई देते है और रेतीले धोरे तो मानो हरे मखमल के पाँवडे बिछा कर सध्या--सुन्दरी का स्वागत कर रहे हैं।

"वलूम्बडी रीझी बिडलै रूप,
वहोनी झमी करै वखाण।
धरा चो हरियो मखमल ढाल,
धोरिया प्रगटै इम अपणाव ॥" (२४)

बेहोनी की झाडी के गुलाबी फूल रात मे भी नही मुर्झाते, इसका उल्लेख कवि के सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण का परिचायक है।

'साझ' के कवि का कैनवस बडा विस्तृत है, उसने सध्या को विभिन्न रूपो मे देखा है और उसका विभिन्न दृष्टियो से वर्णन किया है, आरभ के सात आठ छदो मे कवि ने सध्या को एक नायिका अथवा दुलहन के रूप मे चित्रित किया है। यह वर्णन प्राय अलकृत है परन्तु अलकारो का प्रयोग सहज है, सप्रयास नही और साथ ही प्रत्येक चित्र मे छलकते भावों के सामने वे स्वय उनके पोषक बन कर गौण स्थान धारण कर लेते हैं। श्लेष से पुष्ट रूपकातिशयोक्ति का भावपूर्ण उदाहरण देखिए—

"लुकाती दिवलो अ वर ओट,
निरखवा आई ओ ससार।
धडकती छाती धीमी चाल,
मुलकता नैणा सुरमो सार।" (६)

इस छद मे 'अम्बर' का श्लिष्ट प्रयोग कितना सहज और सार्थक है जो अचल की ओट म दीपक छिपा कर किसी अपरिचित स्थान की ओर धडकते हृदय से धीरे

धीरे बढ़ने वाली किसी नव-वधू में चित्र को पूर्णता प्रदान करने में सहायक हुआ है। कवि ने छिपती हुई लालिमा में उसकी मुसकान और बढ़ते हुए अन्धकार में घुरने की कल्पना की है। मुसकान में नया स्थान देखने की सहज जिज्ञासापूर्ण प्रसन्नता और धड़कते हृदय से अपरिचित स्थान होने के कारण नारी-सुलभ आशंका की व्यंजना की गई है। 'धुलकता नैणा' में विशेषण-विपर्यय है और 'दिवला' बाद का प्रतीक होने से रूपकातिशयोक्ति सिद्ध हुई है परन्तु पूरी अलंकार-योजना सहज, स्वाभाविक और भाव-चित्र की साधक है। भाटीजी के इस काव्य में चित्रांकन की छायावादी शैली अपने पूर्ण वैभव के साथ अवतरित हुई है।
आगे के कतिपय छंदों में कवि ने जीव-जगत पर सन्ध्या के प्रभाव का चित्रण किया है पर उसने केवल सुखद प्रभाव ही नहीं देखा है, जिन औषधारियों पर सन्ध्या का दुखद प्रभाव पड़ता है, उन पर भी कवि की दृष्टि गई है। सन्ध्या यदि किसी के लिए मधुर-मिलन का सुखद सदेश ले कर आती है, तो किसी के लिए वियोग के दुख की घड़िया भी। कवि की सहानुभूति सब के साथ है।

> "मिनावै यूं वाला दिन रंग,
> हुलसतो हियड़ा नेह हिड़ाय।
> भला कद होसी वह परभात
> कलपतो चकवी रै चित माय ॥' (१२)

आगे कतिपय छंदों में कवि ने सन्ध्याकालीन प्राकृतिक उपकरणों-मेघखण्डों, किरणों, तारों, चन्द्रमा, अन्धकार आदि के रंगीन और सजीव चित्र अंकित किये हैं। अस्तगत सूर्य की किरणों से चमकने वाले पोखरों के स्वर्णिम जल के समान मेघखंड और उनकी रुपहली कोरें (सिलवर लाईनिंग) एवम् क्षितिज पर धीरे धीरे लुढ़कते हुए अन्धेरे की रंगीनी का चित्र कितना सुन्दर बन पड़ा है—

> "चिलकै सोने रा चीलरिया,
> बणगी बा रूपाली पाल।
> कूपलो किरणां ढुलियो आज,
> गुदलतो परण असमानी ढाल।" (१६)

आसमान की ढलान पर किसी सुन्दरी के कज्जल के 'कूपले' का 'ढुलना' और उसे 'गदला' कर देना शनै शनै अवतीर्ण होने वाले अन्धकार को कितनी वास्तविकता के साथ चित्रित करता है। भाटीजी के प्रकृति चित्रण में जहां एक ओर प्रसाद की सी भावात्मकता है तो दूसरी ओर महादेवी जैसी रंगीनी भी।
ऊपर दिये गये उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भाटीजी का प्रकृति-चित्रण राजस्थानी संस्कृति के रंग में सराबोर है। यह राजस्थानी रंग 'सांझ' के प्रकृ-

चेत्रण की एक प्रमुख विशेषता है जो उसे हिन्दी के प्रकृति-काव्या से अलग करता है परन्तु यह स्थानीय रग भी कवि ने इस कौशल से चढाया है कि वह एक देशीय होकर भी सार्वभौमिक है, वह विशिष्ट होकर भी सामान्य है और सार्वजनीन अनुभूति को स्पर्श करता है। चित्रो की स्थानीय विशिष्टता साधारणीकरण मे बाधक नही होती। रूपक और उल्लेख से पुष्ट सध्या के निम्नाकित वर्णन का राजस्थानी रग देखिए—

"भली यू साझ मुखा री रंग,
दामतं दीनडं री ठाडोन ।
नीद री नणदल, सपना सेज,
परणती सरग-परी री खोन ।" (१४)

यहाँ साझ को नीद की ननद कहा गया है क्योकि राजस्थान म ननद ही नव-विवाहिता भावज की शय्या सजाती है और यदि नीद को नव वधू माना जाय तो साझ द्वारा उसकी शय्या सजाने की सार्थकता स्वत स्पष्ट हो जाती है। साथ ही क्षितिज पर फैली लालिमा को दुलहन बनी हुई किसी स्वर्ग-परी की 'खोन' कहा गया है। राजस्थान म नव-वधू का आचल बडे बूढो द्वारा लड्डूओ से भरने की प्रथा है जिसे 'खोल भरना' कहते है— यहां 'खोन' शब्द स तारो के लड्डू होने की और लालिमा के लाल अचल होने की व्यजना है। राजस्थानी सस्कृति से वेष्टित प्रकृति-चित्रण के ऐसे अनेक छदा का 'साझ' अमूट भडार है।

आगे के अनेक छदो मे कवि ने सध्याकालीन ग्रामीण वातावरण के और जनजीवन के एक से एक बढकर चित्र प्रस्तुत किये हैं। यह वर्णन काफी विस्तृत है जिसमे कृषक वधुओं के, पनिहारिनो के, बटोहियो के, घरो को लौटती हुई गौओ के और अन्य पशु-पक्षियो के क्रिया-कलाप के सुरम्य चित्र हैं जो कवि के व्यापक प्रकृति-पर्यवेक्षण के परिचायक हैं। छद ५२ से ६२ तक कवि न सध्या को विरह का उद्दीपक मानकर विरहिणी की व्यथा के चित्र भी अकित किये हैं परन्तु यह वर्णन भी परम्परागत वर्णन से थोडा भिन्न है। इसमे विरहिणी की व्यथा का चित्रण ही मुख्य है, सध्या का उद्दीपक रूप प्राय गौण ही रहा है। जिन छदो म साझ का स्पष्ट उल्लेख है, वहां भी कल्पना-वैभव और मार्मिकता द्रष्टव्य है। देखिए, निम्नाकित छद मे सूर्यास्त के साथ नवयौवना वियोगिनी की व्यथा को कितनी सुन्दरता से सश्लिष्ट किया गया है—

"जोबन पिणघट घट भर छोय,
विजोगण ऊभी आ पिणिहार।

> डुबोवै धर सूरज- -घट एक,
> अभागं रिम घण डूगो भार ! " (५६)

नव-युवती यौवन के सरोवर मे कुचरूपी दो-दो घडे भर कर लाती है और कवि प्रश्न करता है कि जब धरा सुन्दरी सूर्य रूपी एक घडे का भार वहन करने मे असमर्थ होने से उसे डुबो रही है तो यह बाला इन दो-दो घडो का भार कैसे सहेगी शृंगारिक भावना का कितना मर्यादित और सुरुचिपूर्ण चित्रण है। और अलकार वे वास्तव मे भावना की देह को विभूषित करने वाले आभरण बन कर धन्य हो गये हैं

सक्षेप मे 'साझ' सजीव प्रकृति-चित्रण के मार्मिक उदाहरणो का एक ऐसा अक्षय भडार है जिसकी क्षमता का विशुद्ध प्रकृति-काव्य हिन्दी मे भी खोज निकालना कठिन होगा। उसमे प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण है, व्यापार चित्रण है, चित्रो की रगीनी है मार्मिक भावो की पृष्ठभूमि है, कल्पना का वैभव है, स्थानीय रग का प्राचुर्य है और है शैली की प्रौढता और लाक्षणिकता। वह आधुनिक राजस्थानी साहित्य का अमर गौरव-ग्रथ है।

साझ का लोक-पक्ष—

साझ प्रकृति-काव्य होते हुए भी लोक-जीवन से विच्छिन्न नही, यह उसकी अपनी विशिष्टता है। इस काव्य की विषय-वस्तु मोटे रूप मे निम्न वर्गो मे विभाजित की जा सकती है —

- (क) सध्या वर्णन-छद १ से २१, छद ६३ से ८० और ८३ से ८८ ।
- (ख) पशु-पक्षी व वनस्पति आदि पर सध्या का प्रभाव-छद २२ से ३२ ।
- (ग) सध्या-कालीन ग्राम्य-जीवन का चित्रण-छद ३३ से ५२, ७८ से ८२ और ८६ से १०२ ।
- (घ) विरह-वर्णन-छद ५३ से ६२ ।
- (ङ) युग-ध्वनि-वर्णन (साझ मे कवि के प्रश्न) १०३ से १०६ ।
- (च) कवि का आशावाद ११० से ११५ ।

परन्तु इन वर्गो को दो मुख्य शीर्षको के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(i) प्रकृति चित्रण और (ii) जीवन-चित्रण। प्रकृति-चित्रण पर पिछले पृष्ठो मे विचा किया जा चुका है, आगे 'साझ' के जीवन-चित्रण पर विचार किया जारहा है। 'साझ' मे ग्राम्य-जीवन का चित्रण हुआ है जिस पर राजस्थान का गहरा स्थानी रग है परन्तु फिर भी वह सर्वदेशीय है। आरभ के कुछ छदो मे कवि ने सध्या के समय का ग्रामीण वातावरण एवम् ग्रामीणो के क्रिया-कलाप का वर्णन किया है

कही मार्ग मे ऊ ट पर आडे पिलाए बैठे बटोही 'मूमल' गाते हुए गाँव की ओर जा रहे हैं तो कही गायो को चरा कर लौटते हुए ग्वालो की बसरी की झनकार सुनाई दे रही है। बच्चे अपनी अपनी गौओ को लेकर घरो का जा रहे हैं। कवि का ध्यान उस 'सीरोले' के सांड की ओर भी गया है जो सब का होकर भी किसी का नही है, इसलिए बेचारा कान लटकाये चौहटे मे खडा है। ग्रामीण कुल वधुए आचल की ओट मे दीपक छिपाये मन्दिर म उसे समर्पित करने जा रही है। लेकिन कवि ने इन क्रियाकलापो की परिगणना मात्र नही की है, उनके बड़े सुन्दर भावपूर्ण और कल्पनापूर्ण सश्लिष्ट चित्र अकित किये है। मन्दिर म दीप-दान करती हुई एक कुल-वधु का यह चित्र देखिए—

मन में कापी कवळी जोत
छोडता उण आचळ री ओट।
धूणते माथे नटी निपट,
आवतां धण आंख्या रै कोट। (छद ४३)

दीपक की लौ ग्रामवधू के आंचल का आश्रय छोडना नही चाहती, अत सिर धुन धुन कर मानो अपनी व्यथा प्रकट करती है, परतु आचल के हटते ही जब वह ज्योति उसकी आखो म प्रतिबिम्बित होती है तो उसे अधिक सुरक्षित स्थान समझ कर वही आश्रय ग्रहण कर लेती है। एक सामान्य सी घटना को कवि-कल्पना ने कितने आत्मीयतापूण चित्र म परिणत कर दिया है। इसी प्रकार आगे के छद मे कवि न साध्य गगन म प्रकट होने वाले एकाकी तारे को धरती पर फैले बहन भाई के स्नेह पर ईर्ष्या करते दिखाया है। अन्य छदो म कही श्रावण की सध्या म नव विवाहिता को अपने भाई की बाट जोहते दिखाया है तो कही पनघट पर जाती पनिहारिनो का मनोहर चित्र है। इन सभी चित्रो पर राजस्थानी सस्कृति का गहरा रग है।

५३वे छन्द से विरहणी की व्यथा का चित्रण आरम्भ होता है परतु यहा भी कवि ने निरी परम्परा का अनुसरण करने के बदले सुन्दर मौलिक और मार्मिक कल्पना का परिचय दिया है। क्षितिज तक फैली हरियाली को देख कर विरहिणी का सूना हृदय व्यथा से भर जाता है और वह कहती है--

खितिज री छाती लग लोलाण
धरा मे दीसै घणो सुगाळ।
हारिया वरखता दो नैण,
कठै पण हिवडै मीठो फाळ। (छद ५५)

छद ७८ से ८२ तक के चित्र इन चित्रा मे भिन्न है। जन-जीवन के प्रारम्भिक चित्रण म जहा कवि ने प्राय, कुल-वधु के क्रियाकलाप के चित्र अकित किय हैं, वा

इन छंदों में वात्सल्यमयी माता और शैशव के चित्रों की प्रधानता है। निद्रा-मग्न बालक की चपलता के सहसा लुप्त हो जाने का इन पंक्तियों में कितना सुन्दर वर्णन हुआ है—

> अघर बीच पोढी सास मुलाय,
> सायत जग – भटकी अणचेत ।
> चचळ अगा री चक – चाळ
> लेयगो नभ–पथ किसो कुमेत ! (छंद ८१)

दुनिया भर मे भटकने के पश्चात् स्वयं शान्ति को भी यदि कहीं शान्ति मिली तो वह सुषुप्त शिशु के शान्त अधरों में। न जाने उसकी सहज चपलता का कौन कुम्मेत घोडी नभ-पथ से उडा कर ले गई। इस छंद म जहा एक ओर आज जीवन की अशांति की प्रबल व्यंजना है, वहा दूसरी ओर 'कुमेत घोडी' द्वा शिशु की चपलता को नभ-पथ से उडा ले जाने म बाल-सुलभ कल्पना व मनोहरता पर हलका सा राजस्थानी रजवाडो के जीवन का रंग भी चढ गया है।

जन-जीवन-चित्रण का अंतिम अंश छंद ८६ से आरम्भ होता है। इन छंदों ग्रामीण गृहस्थो के अभावपूर्ण जीवन के करुण चित्र हैं। यह वर्णन युग-भावना प्रभावित है। भाटीजी प्रगतिवादी काव्य-युग के कवि हैं, अत उनके लिए य स्वाभाविक ही था कि वे कुछ क्षणो के लिए प्राकृतिक सौंदर्य से अपनी दृष्टि हट कर किसानो के अभावग्रस्त जीवन को भी देखते। कृषक-वधुएँ सन्ध्या समय बोझा अपने सिर पर रखे अपने खेत से घर को लौटती हैं पर वे अभी से आने वाले कलकी चिन्ता से ग्रसित हैं। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओ का अभाव उसके हर उदीयमान 'प्रभात' को भी 'अधेरी रात' मे परिणत कर देता है। उधर, अपने बच्चो से मिलने के उल्लास मे भरी कृषक वधू जब घर मे कदम रखती है तो भूख से व्याकुल अपने बाल-कन्हैया को निरखता देख उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है—

> फिळ मे आई घणी हुलस,
> लागी पगाँ सुहागण भूख ।
> कळपियो बालूडो हट झेल,
> हुया जद हिवडे रा दो टूक । (छद ९१)

इन कृषक-वधुओं को अपने अभावग्रस्त घर मे जीवन की अनगिन राते बितानी है। ऐसा लगता है कि इनके जीवन म रात के बाद प्रभात नहीं होता, पुन. रात ही आ जाती है—

> जिकण मे बीतैली आ साझ
> बिताणी काळी राता लाख ।
> नवोडो आयो नी परभात,
> भुलाणी रात रात मे भाख । (छंद ९४)

र फिर कवि साझ से प्रश्न करता है कि हे सध्या ! सच बताना, तू ने इस
ा पर क्या देखा ? इसका उत्तर साझ से दिलाते हुए कवि दलितवर्ग के शोषण
: प्रकाश डालता है। एक ओर वह सम्पन्न वर्ग है जिसे प्रभात होते ही जीवन
र की भूख इकट्ठी ही लगती है और दूसरी ओर वह श्रमिक वर्ग है जिसे दो
न भोजन भी नसीब नही होता और जिनकी काया बाजरी के सिट्टे की
ति उदर-ज्वाला से भुनती रहती है ! जमीदारो और सूदखोरो को सीधी
लिया न दे कर (जैसा कि प्रगतिवादी कवि प्राय करते हैं) सांझ का
वि प्रतीकात्मक ढग से उन के शोषण का चित्र प्रस्तुत करता है —

चढै जुग समदर री वोछाळ,
जडा सू ढावा ढऱना जाय ।
मचाएा वरिएया मगर वटाळ,
सावती मछलिया गिट जाय। (छद १०१)

छायावादी शैली के कवि होने के कारण भाटीजी ने अपने प्रगतिशील विचारो
की अभिव्यक्ति मे भी अपनी शैली की लाक्षणिकता सुरक्षित रखी है । कवि
का ध्यान ग्रामीण नारी की अशिक्षा, अधविश्वास और सामाजिक कुरीतियो की
ओर भी गया है जिनके कारण उसका जीवन निराशा मे जर्जर हो रहा है । अत
म कवि स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार करता है कि चाहे अन्य कवियो ने सध्या के
अनुपम सौंदर्य का ही वर्णन किया है, परन्तु उसका हाथ युग के हाथ ने पकड
लिया है— वह जन-जीवन के अभावो को अनदेखा नही कर सकता । वह अपनी
विवशता प्रकट करता हुआ साझ से पूछता है —

वता किम वरणू थनै आज
तीजणी सावण री मन मार :
वा तो आधी नागी भूख,
भूलगी धरती रा त्योहार। (छद १०६)

कवि ने छह छदो मे सध्या से इसी प्रकार के प्रश्न किये है जो कवि की उस
दुविधापूर्ण मनोवस्था के परिचायक हैं जो एक ओर उसे सध्या की शोभा वर्णन
के लिए प्रेरित करती है तो दूसरी ओर जन-जीवन के शोषण का चित्रण करने
के लिए उद्वेलित करती है। अन्त मे कवि ने उज्ज्वल भविष्य मे अपनी आस्था
प्रकट की है और वर्त्तमान अभावो को जीवन की अस्थायी परिस्थिति माना है ।
उसे विश्वास है कि सतप्त धरा को प्रफुल्लित करने वाली उषा शीघ्र ही अवतरित
होगी और तब —

जिकण री गोद्या मे अणमोल
हंसे है माएास कुल रो भाए।

किरण श काचा धागां माय
सचरै जागरी जीवण पाण। (छंद ११५)

इस प्रकार 'सांझ' में कवि ने अपने काव्य का प्रारम्भ प्रकृति काव्य के ।
किया है पर उसका अंत एक जीवन-काव्य के रूप में किया है यद्यपि उसका
चित्रण सध्या की प्राकृतिक घटना से सर्वथा विछिन्न नहीं है।

'सांझ' और छायावाद

'सांझ' छायावादी शैली का प्रथम राजस्थानी काव्य है। छायावादी कवि
में आत्मा के दर्शन करता है और उस पर मानवीय भावनाओं और व्य
का आरोप करता है। डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "(छायावादी) कवि
प्रकृति में चेतन व्यक्तित्व के आरोप द्वारा अपने हृदय की सौन्दर्यभावनाओं के
किया है। × × × इनके लिए नारी सहचरी, देवी तथा माँ है। और उसके
साथ से कवि को गंगास्नान की पावन अनुभूति का भान होता है। इस आदर्श
सौन्दर्य-बोध का आभास नारी-चित्रण के अतिरिक्त प्रकृति-चित्रण में भी उप
होता है।" *

'सांझ' में प्रकृति मुख्य तथा नारी गौण है। कवि ने स्वय सध्या को तो नारी
व्यक्तित्व प्रदान किया ही है, सध्या के समय ग्रामीण नारी के क्रिया-कलाप वर्ण
नारी का चित्रण प्रधान हो चला है। भाटीजी ने सध्या को 'बनड़ी' (दुल
के रूप में देखा है जो नारी-जीवन का कोमलतम और मधुरतम रूप होता है।

लहरै रंग - रगाणा केस
जिण में लुकी रूप रो राग।
काजळिया कवळा तणो पराग,
बनी रै थिर जोबन रो थाग। (छद ३)

कवि ने रात्रि के अन्धकार में सध्या की केशराशि देखी है और अन्धकार
सघनता को उसके यौवन की गहराई माना है। साथ ही अन्धकार को नीलोत
का पराग कह कर एक ओर उसके बालों से उठने वाली सुगन्ध का संकेत कि
है तो दूसरी ओर सध्या-कालीन शीतल मद सुगन्धित पवन की व्यजना भी
है। उसके केशपाश में 'रूप की रागिनी' छिपी हुई है। ऐसी गुम्फित कल्प
और ऐसी लाक्षणिकता हिन्दी के किसी भी कवि की समता में रखी जा सकती है
यह सध्या रूपी दुलहन बिहारी की नायिका सी सुकुमारी भी है और राजस्था
नारी सी अलकार-विभूषित भी —

आवै कूकूं पगल्या मेल,
अठै तो काटा रो ससार।

* आधुनिक कविता का मूल्यांकन पृ० ३७

संभै ना थांसू हळको चीर,
जिकण में रिमझोळा रो भार। (छंद ५)

साथ ही उस में अज्ञात-यौवना सा अल्हड़पन भी है।

थूं आई येट धरा आगूंच,
पळकतो राखड़िया भर थाळ।
रात री ए नेनकडो बेन
उडै है कूंकू थाळ सभाळ। (छद ७)

भाटीजी की नारी-भावना मे सुकुमारता और सौंदर्य तो है पर हिन्दी के छायावादी कवियो सा वायवीपन और सूक्ष्मता नही है। उनकी नारी इस धरती की ही प्रत्यक्ष नारी है जो राजस्थानी वेश-भूषा से सुसज्जित है और उस पर राजस्थानी संस्कृति का रग है। साझ के उत्तरार्द्ध मे जिस ग्रामीण नारी का चित्रण हुआ है, वह तो निश्चित रूप से छायावादियो की 'अप्सरि' न होकर प्रगतिवादियो की शोषित और उत्पीडित नारी ही है। अत कहा जा सकता है कि भाटी जी में नारी-भावना की दृष्टि से छायावादी भावना के साथ प्रगतिवादी भावना का समन्वय हुआ है। जहा नारी उपमान रूप मे प्रयुक्त हुई है वहा उसका स्वरूप छायावादी कवियो की नारी के अधिक निकट है परन्तु जहा वह स्वय वर्ण्य विषय बन गई है, वहा वह इसी कटकाकीर्ण ससार की अज्ञान और अधविश्वासो से ग्रसित शोषित और उत्पीडित यथार्थ नारी है।

भाटीजी की शैली मे छायावाद की सभी विशेषताएं अवश्य विद्यमान है। रूपकातिशयोक्ति और प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग व्यापक रूप से हुआ है, अमूर्त को मूर्तता प्रदान करने की प्रवृत्ति भी अनेक छंदो मे मिलती है। विशेषण विपर्यय भी यत्र-तत्र विद्यमान है और मानवीकरण तो आद्योपात है ही। ऊपर उद्धृत छद सख्या ५ मे 'कुकू पगल्या,' 'हळको चीर' और 'रिमझोला क्रमशः लालिमा, मेघ और झिगुरो की झनकार के व्यजक होने से रूपकातिशयोक्ति सिद्ध हुई है और सध्या का मानवीकरण भी इस छद मे विद्यमान है। अमूर्त को मूर्त रूप देने की प्रवृत्ति नीचे की पक्तियो मे स्पष्ट देखी जा सकती है—

डीगोडा डूंगर घोरां मांझ
वरसतो झीणोडो बिसराम।
जिकण में भीजै वा इकलाण
विराजी सांयत बण जजमान। (छंद २१)

यहां कवि ने अमूर्त विश्राम मे भी झीनापन देखा है और उसे बरसता हुआ बताया है एवम 'शान्ति' को यजमान बनाकर बिठाया है और एकांत को विश्राम से भीगते हुए दिखाया है। अमूर्त को मूर्तता प्रदान कर के चित्राकन करने की कवि की क्षमता का यह श्रेष्ठ उदाहरण है। छठे छद मे सध्या को 'मुळकता नैणां सुरमो

सार' कहने म विशेषण-विपर्यय विद्यमान है और भाषा की सुकुमारता और मधुरता तो 'साझ' का प्राण है। ऊपर उद्धृत छद ३ मे यद्यपि 'ण' और 'ळ' की प्रचुरता है, तथापि भाषा की मधुरता और सुकुमारता सुरक्षित है। सक्षेप म कहा जा सकता है कि भाटीजी ने 'साझ' म छायावादी शैली का अत्यत सफलता से प्रयोग किया है।

'साझ' के कुछ छदो म रहस्यवादी प्रवृत्ति भी मिलती है जहाँ कवि प्रकृति की शोभा के पीछे किसी अज्ञात सत्ता की कल्पना करता हुआ उसके विषय मे जिज्ञासा भरे प्रश्न करता है। उदाहरणार्थ—

आयूणा रंगां मामल आज
करै कुण केसर चौ वोपार ?
रात मे हीरा वाळी हाट,
बिखेरै कुण जी अणगिण हार ?

परन्तु यह एक आकस्मिक जिज्ञासा मात्र है, कवि की आतरिक प्रवृत्ति इस प्र की नही है। ऐसे छद ८३ से ८८ तक केवल छह हैं।

'सांझ' का कला-पक्ष

छायावादी शैली की विशेषताओ के अतिरिक्त 'साझ' म अनेक प्रकार के अल का व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है परन्तु वे सदा भावों के साधक बनकर ही है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—रूपक, सन्देह और उत्प्रेक्षा—

हुवौ थिर समदर-आभो जाण,
कसा मे घुळ कसूबल रग।
निचोयो साझ-नार जिमि चीर,
दई कै देवत नैगा सुरग। (छद १५)

रूपक, रूपकातिशयोक्ति और काव्यलिंग की सयुक्त योजना का यह उदाहरण भी देखि

जोबन-पिणघट घट भर दाय,
बिजोगण ऊभी आ पि णहार।
डुबोवै घर सूरज घट एक
सभाळै किम धण दूणो भार। (छद ५६)

'जोबन-पिणघट' 'बिजोगण पिणिहार' और सूरज घट' म रूपक, प्रथम च में 'घट' उपमान द्वारा 'उरोज उपमेय की व्यजना म रूपकातिशयोक्ति और उ उरोजो का भार न सह सकने का चमत्कारपूर्ण कारण प्रस्तुत करने से काव्यं की व्यजना हुई है। राजस्थानी नारी की भाँति अलकारो से लदा होने , इस छद के भाव सौंदय को कही आघात नही पहुचा है वरच उसकी वृद्धि ही । विरोधमूलक अलकार 'विनोक्ति' का भी एक उदाहरण देखिए—

खितिज री छाती लग लीलाए
धरा में दीसे घणो सुगाळ ।
हारिया बरसता दो नैण,
कठै पण हिवडै मीठो फाळ । (छद ५५)

दोनो नैन बरस-बरस कर हार गये पर हृदय वल्लरी पर मिलन का मधुर फल न लगा—कारण के होते हुए भी काय को सिद्धि न होने से विशेषोक्ति अलकार है जो वियोगिनी की व्यथा प्रभावशाली ढग से व्यजित करने म सहायक हुआ है। अत यह कहना कोई अत्युक्ति नही होगी कि भाटीजी अलकारो के सार्थक और प्रभावशाली प्रयोग में अत्यत कुशल हैं।

'साझ' के कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उसके छदों में भाषा का सहज प्रवाह सुरक्षित है और उसमे कसावट इतनी है कि सहसा बिहारी के दोहो का स्मरण हो आता है जिनमे हर शब्द का अपना महत्त्व है और भरती के शब्दो के लिए कोई स्थान नही। नीचे उद्धृत छद म भाषा का सहज प्रवाह और लालित्य दर्शनीय है—

भली थूं साझ सुखा री देण,
दाझतै दिनडै री ठाडोळ।
नीद री नणदल, सपना सेज,
परणती सरग परी री खोळ। (छद १४)

भाषा की चित्रोपमता की चर्चा पीछे की जा चुकी है। भाटीजी चित्राकन में रगो के साथ-साथ दृश्य और श्रव्य अनुकरणात्मक शब्दा का भी व्यापक रूप मे प्रयोग करते हैं। दृश्यात्मक अनुकरण-शब्दों मे पळकती, चळापळ, झुटपुटियो, और श्रव्यात्मक मे कुरळाय, टणमणती, टणकार, भणकार, खुडकै आदि शब्दो के उदाहरण लिये जा सकते हैं। ऊपर उद्धृत १४वा छद कवि के शब्द-चयन-कौशल का भी अच्छा उदाहरण है इसी प्रकार ५१ वें छद मे 'पवन' के लिए 'पवनियो' शब्द का प्रयोग उसके आवारापन की व्यजना के लिए अत्यत उपयुक्त है। १४ छद मे साझ को 'दाझतै दिनडै री ठाडोळ' कहने मे भी कवि के शब्द-चयन का कौशल स्पष्ट दिखाई देता है।

निष्कर्ष मे कहा जा सकता है कि साझ का कला-पक्ष भी उतना ही पुष्ट है जितना भाव पक्ष। इन दोनो पक्षो के सतुलन मे 'साझ' मे कही कही छद सम्बन्धी असावधानी खटकने वाली है। 'साझ' का छद मात्रिक है परन्तु मात्रिक छदो म भी लय की सिद्धार्थ कुछ गण सम्बन्धी प्रतिबध होते हैं जिनकी अवहेलना करने से छद की गति बदल जाती है, जैसे, दोहे के अ त मे जगण या तगण ही आने आवश्यक हैं अ यथा

दोहे की गति ही न रहेगी। यहाँ प्रयुक्त 'शृंगार' छंद १६ मात्रा का छंद है जिसका हिन्दी के छायावादी कवियों ने व्यापक रूप मे प्रयोग किया है। इस छंद मे भी कुछ लघु - दीर्घ मात्राएँ सही स्थान पर न आने से इसकी गति भग हो जाती है। उदाहरणार्थ

"चिलके सोने रा चीलरिया"
"उरमा सुगन चिडी रो पाँख"

ये दोनो चरण सगण से प्रारम्भ होते हैं परन्तु प्रथम मे अत का 'चीलरिया' शब्द गति को नष्ट करता है और द्वितीय चरण मे अत में ऽ। आने से छंद की गति सुरक्षित है। स्पष्ट है कि इस छंद का अत ऽ। मे होना आवश्यक है और इसे । मे अंत सह्य नही है। जहा कही ऐसा हुआ है छंद की गति दूषित हो गई है। ४० छंद की गति तो अक्षम्य रूप से विकृत है, उसके सभी चरणो का अत ऽऽ मे हुआ जो इस छंद के अनुकूल नही है। देखिए—

टाबर दूध दूध हठ भेलें
बूढी मा मना मना हारी।
वे सूना घर जदै विसारें
जगत मे माया मिनक्ला री। (छंद ४०)

इस छंद का प्रथम चरण गतिभग दोष से पीडित है तो दूसरे चरण मे एक मात्रा अधिक है–'बूढी' शब्द के स्थान पर तीन मात्रा वाला शब्द होना चाहिए था। तीसरा चरण सर्वथा भिन्न छंद का चरण है जो प्रथम चरण से समानता रखता और चौथा चरण सबसे ही अलग गतिवाला है। आश्चर्य है ऐसा दूषित छंद अपने काव्य मे भाटी जो ने कैसे सह लिया। वैसे गति-सम्बन्धी और मात्राधिक्य सबधी छुटपुट दोष कतिपय अन्य छंदो मे भी हैं।

नौवें छंद में 'पीला दुकिया साझ' मे भी च्युत-सस्कृति दोष है क्योकि 'दुकिया' शब्द स्त्रीलिंग हैं, अत उसका विशेषण भी 'पीली' होना चाहिए था। परन्तु ऐसे छुटपुट दोषो से तो अनेक महाकवियो की रचनाए भी मुक्त नहीं हैं। राजस्थान मे सुन्दर बालक को नजर से बचाने के लिए उसके ललाट पर काजल से एक चन्द्रमा बना देते हैं (या डिठोना लगा देते हैं)। किसी सुन्दर काव्य के लिए इन दोषो को भी डिठोना ही समझना चाहिए।

समग्र रूप मे साझ की रचना राजस्थानी के काव्य-जगत की एक महत्वपूर्ण घटना है और प्रकृतिकाव्य की दृष्टि से वह राजस्थानी साहित्य का एक अद्वितीय काव्य है

—गणपति चन्द्र भण्डारी

1

पंखिया परदेसी अजकाय,
आगमैं असमांनी असमान ।
उडै कोइ आथूणी गुलाल,
आई सांझ धरा मिजमान ।

शब्दार्थ :

पखिया : पक्षीगण; अजकाय : चंचलता से, आगमैं : आगमन करते है; असमानी : आसमानी (नीला) रग ; असमांन : आकाश; उडै : (मानो) उड़ती है; आथूणी : पश्चिम दिशा मे; मिजमान : मेहमान ।

अर्थ :

परदेशी पक्षी नीलाकाश में (अपने नीड़ की ओर) व्यग्रता से आने लगे हैं। धरती पर संध्या मेहमानबन कर आई है (जिसके स्वागत में) पश्चिम दिशा की लालिमा (के रूप मे) मानो गुलाल उड़ रही है।

विशेष टिप्पणी :

'आई साझ धरा मिजमान' मे सांझ को अतिथि का रूप मे राजस्थ सस्कृति प्रतिबिम्बित है जिसमे अतिथि-सत्कार को विशेष महत्त्व दिया जाता है। राजस्थानी मुहावरे 'मेह पावणा कितांक' मे भी मेह और पाहुनो को एक-सा माना गया है क्योंकि दोनो के दर्शन मरुधरा मे दुर्लभ हैं।

(ii) सध्या के प्राकृतिक दृश्य मे अतिथि के आगमन और गुलाल उड़ाकर उसके स्वागत की उत्प्रेक्षा से हर्षोल्लास की जो व्यजना हुई है वह स्तुत्य है। चित्र की रगीनी और शब्दो का मितव्यय द्रष्टव्य है।

(iii) प्रथम चरण मे 'प' का छेक और द्वितीय में 'अ' का वृत्यानुप्रास है। तृतीय चरण में उत्प्रेक्षा और चतुर्थ मे 'साझ' और 'धरा' का मानवीकरण है।



2

हँसै किण वनडी तणौ सुहाग ?
वादली भीणी घूघट ओट ।
वीखरै डावर नैणा लाज,
चमक्कै चोखी कोरा गोट ।

शब्दार्थ :

किण किस वनडी दुलहन, तणौ का वादळी बदली, भीणी पतली, वीखरै बिखरती है, डावर छोटी तलैया, नैणा नयनो से चमक्कै चमकती है, चोखी सुन्दर, कोरा गोट कोर गोटा या किनारं (चमकीले सुनहरे या रुपहले धागो का फीता) ।

अर्थ

विरल मेघो के झीने घूघट की ओट मे किस दुलहन का सुहाग हँस रह है ? (उस दुलहन की) छोटी तलैया जैसी (सुन्दर सजल) आँखो रं लज्जा बिखर रही है । (उसकी ओढ़नी पर लगी) सुदर गोटे की किनारं चमक रही है ।

विशेष टिप्पणी :

(1) यह छद प्रकृति के मानवीकरण का सुदर उदाहरण है जिसमे सध्या क राजस्थानी नारी के रूप मे चित्रित किया गया है । अग्रेजी के रोमांटि व हिदी के छायावादी कवियों ने भी सध्या की नारी रूप मे कल्पना क है । कोर गोटे' के वस्त्र और 'घूघट ओट से स्थानीय रग से राजस्थान नारी का चित्र सजीव हो उठा है । अपने अप्रस्तुत विधान पर राज स्थानी जीवन का यह रग कवि की मौलिक विशेषता है ।

(ii) साध्य गगन की लालिमा मे किसी दुलहन के सुहाग' को हँसते देखन एक सुदर सश्लिष्ट चित्र है जो कवि की उवर कल्पना शक्ति का परि चायक है । सुहाग के मानवीकरण से चित्र-चमक उठा है और उसक हसी की कल्पना मे नव वधू की उमगें और उसका उल्लास मूर्त हं गय है । इतना ही नही कवि ने दुलहन के रूपक का आगे भी निर्वा करते हुए साध्य गगन की लालिमा का नव-वधू की लज्जा से औ

बदलियों के चमकीले पीताभ किनारों को उनकी ओढ़नी के कोर गोटे से उपमित किया है।

(iii) 'डाबर नैंणा'—नयनों की पानी से भरी छोटी तलइया से उपमा दी गई है। बड़ी, गहरी, सजल, आभायुक्त सुन्दर आंखों को 'डाबर - नैंण' कहा जाता है। नैंनों का यह विशेषण परम्परागत है जिसका प्रयोग राजस्थानी लोक- गीतों में मिलता है, परन्तु संध्या के प्रसंग में मेघों की सजलता के कारण यह विशेषण और भी सार्थक हो गया है।

(iv) प्रथम चरण में रूपकातिशयोक्ति और मानवीकरण, द्वितीय में रूपक एवम् तृतीय और चतुर्थ चरण में पुनः रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है।



3

लहरै रैंण रगाणा केस,
जिण मे लुकी रूप री राग।
काजलिया कवला तणौ पराग,
बनी रैं थिर जोवन रो थाग।

शब्दार्थ

रैंण=रैंन, रात्रि, रगाणा रगे हुए, जिण मे जिसमें, लुकी छिपी हुई, री की, काजळिया काले रग के, नीलाभ, कवळा कमलों, तणौ का, बनी दुलहन, रैं के, थिर स्थिर, अक्षय, थाग थाह, गहराई।

अर्थ

(सध्या सुंदरी की) निशावर्णी (रात्रि के रग की अर्थात अधेरे जैसी श्याम) केश राशि लहरा रही है जिसमे सौन्दर्य का (नीरव) सगीत छुप हुआ है। (ऐसा प्रतीत होता है मानो ये अलकावलि) नील कमलों के (सुरभित) पराग की ही राशि हो और (सध्या रूपी) दुल्हन के यौवन की अक्षयता की थाह बता रही हो।

विशेष टिप्पणी

(i) 'जिण मे लुकी रूप री राग' मे भाषा का लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है।

(ii) सध्या की केशराशि को नीलोत्पल का पराग मान कर कवि ने सध्या कालीन सुरभित पवन की व्यजना की है। दुलहन के बालो से सुगंध की लहरें उठना स्वाभाविक भी है। श्याम केशो की (अर्थात अन्धकार की) सघनता को यौवन की गहराई और अक्षयता का परिचायक माना है। नील कमलो को अंधकार का उपयुक्त उपमान माना जा सकता है परन्तु कवि ने उनके पराग को भी अधेरे का उपमान बताया है जो रग-साम्य की दृष्टि से तो उचित नही प्रतीत होता परन्तु गुण-साम्य की दृष्टि से सर्वथा उचित है क्योकि दोनो 'सुरभित' हैं। ऐसा भी माना जा सकता है कि अधेरे को रगसाम्य के आधार पर नील कमल माना है और उसमे समाहित सौरभ को गुणसाम्य के आधार पर कमलो का पराग। कल्पना की सूक्ष्मता द्रष्टव्य है।

4

चलापल ओगनिया री कोर,
भोपणा क ण भूला री भार ?
विहारै गलै अडोनी नार,
सोधवा इण धरनी वो हार ।

शब्दार्थ

चळापळ चमकती हुई, ओगनिया कान के ऊपरी भाग मे पहना जाने वाला पत्तियो के आकार का आभूषण, भोपणा भौंहे, किण कौनसी, भूला विस्मृतियाँ अथवा त्रुटियाँ, री का, विहारै विहार कर रही है, इधर उधर भटक रही है, गळै : गला, अडोळी . विलंकृत, अलकार-हीन, सोधवा . ढूँढने के लिए, इण इस, वो वह ।

अर्थ

(डूबते हुए सूर्य की अ तिम किरणो से चमकती हुई बादलो की कोरें ऐसी सुन्दर लगती हैं मानो सध्या सु दरी के कानो मे लटकते हुए) ओगनियों की (सुनहरी) कोरें चमक रही हो । उसकी (क्षितिज रूपी) भौंहे न जाने जीवन की किन भूलो के स्मरण से बोझिल हैं । (जान पडता है यह दुलहन अपना कठहार खो बैठी है) इस धरती पर उसी हार को खोजने के लिए यह अलकार-विहीन गला लिये इधर उधर (व्याकुल सी) डोल रही है।

विशेष टिप्पणी

(i) 'ओगनिया' नामक आभूषण राजस्थानी वेशभूषा की विशेषता है । इस के उल्लेख द्वारा कवि ने अपने अप्रस्तुत विधान को फिर राजस्थानी रग मे रगा है । 'चळापळ' शब्द की चित्रोपमता भी दर्शनीय है ।

(ii) भौंहों को कवि लोग प्राय चिंता या स्मृतियों से बोझिल चित्रित करते हैं । पत जी ने भी अपनी 'बादल' कविता मे कहा है—

"इन्द्रचाप सी व्योम भृकुटि पर

6

लुकाती दिवलो अवर ओट,
निरखवा आई ओ ससार।
धडकती छाती धीमी चाल,
मुलकता नैणा सुरमो सार।

शब्दार्थ

लुकाती छिपाती हुई, दिवलो दीपक, निरखवा निरखने (देखने) के लिए, ओ यह, मुळकता मुस्कराते हुए, नैणां आखो मे, सुरमो सार सुरमा डाल कर।

अर्थ

(सध्या सु दरी) आकाश रूपी वस्त्र की ओट मे (चन्द्रमा रूपी) दीपक छिपाये हुए इस ससार का अवलोकन करने आई है। वह मद गति से चल रही है, हृदय मे कुछ घबराहट है पर सुरमे से कजरारी आंख मुसकरा रही हैं।

विशेष टिप्पणी

(i) अवर का प्रयोग 'आकाश' और वस्त्र' दोनो अर्थों मे होने से श्लेषालकार है। दिवला' चद्रमा का प्रतीक होने से रूपकातिशयोक्ति है। *मुळकता नैंणा मे विशेषण विपर्यय है।*

(ii) 'धडकती छाती से कवि ने सध्या के हृदय म थोडी घबराहट बताई है क्योंकि वह एक अपरिचित स्थान पर आ रही है। तभी तो वह दीपक लेकर इसे (ससार को) देखना चाहती है।

(iii) बढता हुआ अधकार ही उसकी आंखों का सुरमा है और क्षितिज रेखा पर धीरे धीरे लुप्त होती हुई ललाई की रेखाएँ ही उसकी मुसकान हैं जो नया स्थान देखने की उत्सुकता और जिज्ञासा के कारण उसके होठो पर अनायास ही छा गई है।

7

थूं आई थेट धरा आगूंच,
पळकती राखड़िया भर थाळ।
रात री ओ नेनकडी वैन,
उडे है कूंकूं थाळ संभाळ।

शब्दार्थ :

थू : तू, थेट : दूर; आगूंच : अग्रिम, पहले, पळकती : चमकती हुई; राखडिया : राखियो से, थाळ : थाली; री : की, नेनकडी : छोटी, वैन : बहिन, उडे है : उड रहा है, कूंकूं : कुमकुम; सभाळ : सम्हालले ।

अर्थ :

हे ! रात्रि की छोटी बहिन (संध्या) ! तू चमकती हुई राखियाँ थाल मे सजा कर इतनी दूर इस पृथ्वी पर (अपनी बड़ी बहिन रात्रि से) पहले ही आ गई है। (ओ ! चपल बाले !) देख, तेरे थाल से कुंकुम उड़ रहा है ! उसे सम्हाल तो ले।

विशेष टिप्पणी :

(i) कवि ने सध्या की कल्पना रात्रि की छोटी बहिन के रूप में की है। छोटी होने से वह चपल है और धरती का सौन्दर्य देखने की उत्सुकता से प्रेरित हो कर वह अपनी बडी बहिन के आगे आगे भागी चली आ रही है। अल्हडता के कारण उसे यह भी ध्यान नही है कि उसके थाल मे सजा कुंकुम (सध्या की लालिमा) उड रहा है। 'राखियाँ' तारो का प्रतीक है जिनसे उसका व्योम रूपी थाल सुसज्जित है।

(ii) इस छद मे सध्या का एक उत्सुकता भरी चपल और अल्हड बाला के रूप मे सुन्दर मानवीकरण हुआ है। सध्या का यह सश्लिष्ट चित्र राखियो की चमक और कुकुम की रगीनो से और भी खिल उठा है।

(iii) मानवीकरण के अतिरिक्त इस छद मे 'राखडिया' और 'कूकू' मे रूप कातिशयोक्ति अलकार है। प्रकृति का भावाक्षिप्त रूप मे वर्णन है।

(iv) 'उडै है कूंकू थाळ सभाळ" पंक्ति पढकर महसा प्रसाद की नीचे लिखी पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं-

> "पगली हा सम्हाल ले कैसे
> छूट पडा तेरा अचल,
> देख, विखरती है मणिराजी
> अरी उठा बेसुध चचन !"
>
> (आशा सर्ग—कामायनी)

कल्पना-साम्य होते हुए भी कवि ने मणियो (तारो) के स्थान पर कुकुम (लालिमा) उडा कर सध्या और रात्रि के अतर के प्रति अपनी सजगता प्रकट की है और साथ ही राजस्थानी से युक्त-प्रतीक विधान द्वारा अपनी मौलिकता सुरक्षित रखी है। प्रसाद जी ने जो बात चार पंक्तियो में कही है भाटी जी ने लगभग वैसा ही चित्र इस छद के अतिम दो चरणो मे ही प्रस्तुत कर दिया है। पारिवारिक परिवेश से युक्त इस छद का सपूर्ण चित्र प्रसाद के उक्त चित्र से भी अधिक पूर्ण है।

□

8

वतावण आंचल रग मजीठ,
बधाणी छेहडै कालौ रग ।
खुलै कुण जाणैं किण पुल गाठ,
हुवै सह धरती रग-विरग ।

शब्दार्थ

वतावण . वताने के लिए दिखावे के लिए, मजीठ मजिष्ठा, लाल रग, बधाणी बधा हुआ है, छेहडै छोर पर, किनारे पर, काळौ : काला, कुण कौन, पुळ पल, क्षण, सह सब, समस्त, विरग बदरग अथवा रग विहीन ।

अर्थ :

(सध्या सुहागिन का सौभाग्य सूचक यह) लाल रग का आचल केवल दिखावा मात्र (क्षणिक) है, वस्तुत इसके (दूसरे) छोर पर (वैधव्य सूचक) काले रग की गाठ बधी है। कौन कह सकता है कि वह गाठ कब खुल जाए और सारी धरती का रग बदरग (विकृत) हो जाए अथवा धरा रगविहीन हो जाए ।

विशेष टिप्पणी

(i) यहाँ कवि ने दार्शनिक दृष्टि अपनाते हुए सध्या के सौभाग्य (उसकी रगीनी) की क्षणिकता की ओर सकेत किया है । उसके अचल के दूसरे छोर पर ही तो काल अन्धकार की गाठ बधी है जो न जाने कब खुलकर उसके सौभाग्य को वैधव्य दु ख मे बदल दे ! रात्रि होने पर सध्या की लालिमा के नष्ट होने और अन्धकार के छा जाने की बडी कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति है ।

(ii) दूसरे चरण मे रूपकातिशयोक्ति और अन्तिम दोनो चरणो म अनुप्रास अलकार है।

9

सिधायो सूरज धरती छोड,
देग्यौ सेलाणी मे साझ ।
करै आथूंण घणी अवेर,
लुकावै पीला टुकिया माझ ।

शब्दार्थ :

सिधायो विदा हुआ, देग्यौ देगया, सेलाणी निशानी, आथूंण : पश्चिम दिशा, घणी बहुत, अवेर देखभाल, लुकावै . छिपाती है, पीळा पीले रग की, टुकियाँ कचुकी का सामने का भाग जो उरोजो को ढके रहता है, माझ भीतर ।

अर्थ

सूर्य (दिन भर साथ रह कर अपनी प्रेयसी) धरती से विदा हुआ (और जाते समय अपने प्रेम की स्मृति के रूप मे उसे) संध्या रूपी निशानी दे गया । पश्चिम दिशा (इस स्मृति-चिन्ह को) बडे यत्न से सम्हाल कर रखे हुए है । उसने इसे अपनी कचुकी की पीली टुकियों मे छिपा रखा है (हृदय से लगा कर उसे सँजाये हुए है ।)

विशेष टिप्पणी :

(i) इस में कवि ने सूर्य और पृथ्वी का मानवीकरण करते हुए उन्हें प्रेम युगल के रूप में चित्रित किया है और संध्या को प्रवासी नायक द्वारा नायिका को दिया गया स्मृति-चिन्ह माना है । आगे उसने बताया है कि नायिका धरती अथवा पश्चिम दिशा उस प्रेम चिन्ह को अपनी पीली टुकियों में हृदय से लगा कर रखे हुए है । इस कल्पना से एक ओर मानवीय भावुकता के आरोप से चित्र सजीव हो उठा है तो दूसरी ओर राजस्थानी नवयुवती की हर प्रिय या बहुमूल्य वस्तु को टुकियों में रखने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के आरोप से उस पर अनुपम राजस्थानी

चढ गया है। कल्पना की मौलिकता और उपयुक्तता सराहनीय है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि से यह तथ्य भी ओझल नही हुआ है कि राजस्थानी ग्रामीण युवतियाँ प्राय लाल और पीले रग की कचुकी ही पहना करती हैं।

(ii) इस छद मे भी मानवीकरण और रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है। 'टुकियाँ' शब्द स्त्रीलिंग है, अतः उसके लिए 'पीळा' विशेषण अनुपयुक्त है, 'पीळी' होना चाहिए था।



10

अचपलो दिनडो होसी रात,
चानणों होसी घोर अन्धार ।
कोड री इण मिटवा री वेल,
साझ रै दिवलै ह्वैगी झाल ।

शब्दार्थ

अचपळो चपल, होसी हो जाएगा, चानणो प्रकाश, अन्धार अंधकार, कोड री उमग को, इण इस, मिटवा री मिटने को वेळ वेला, समय, साझ रै सध्या के, दिवलै दीपक के, ह्वैगी हो गई, झाळ ज्वाला लौ ।

अर्थ ।

(अब) चचल दिवस (स्वत) रात्रि मे परिणत हो जाएगा (और) प्रकाश घोर अधकार का रूप ग्रहण कर लेगा। (ऐसा लगता है जैसे प्रकृति ने इस समय स्वय को मिटा देने की तीव्र उमग जाग उठी है ।) आत्म बलिदान की उमग भरी इस वेला मे सध्या भी (निर्वाणोन्मुख) दीपक की (अतिम) लौ के समान भभक उठी है ।

विशेष टिप्पणी

(1) कवि ने इस छद में सध्या के समय प्रकृति मे आत्म बलिदान की भावना देखी है । सध्या भी उस भावना न पूर्ण है अत सध्या के मिटते हुए प्रकाश की अतिम झलक का चित्र कवि न बुझते हुए दीपक की अतिम भभक स उपमा देकर अकित किया है ।

(11) 'साझ रै दिवलै मे रूपक अलकार है (सध्या रूपी दीपक)

11

मिलरण ने आई दिन सूं रात,
पिघलता ढलिया साम्ही ढाळ ।
रह्यो न 'दिन' दिन, रात न 'रात',
बिचाळै साझ बणी जंजाल ।

शब्दार्थ :

मिलरण ने : मिलने को, सूं : से; पिघळता : द्रवित होते हुए; ढळिया : फिसल गये, साम्ही : सामने, ढाळ : ढलाव, बिचाळै : बीच मे; बणी : बन गई; जजाळ : कुहक, स्वप्न ।

अर्थ :

दिन से रात मिलने के लिए आई । दोनों (पारस्परिक प्रेम के कारण) द्रवित होकर ऐसे मिले जैसे आमने सामने की ढालू भूमि पर बहती हुई दो धाराएँ (आपस मे मिल कर एक हो जाती हों ।) (इस मिलाप से) न दिन, दिन रहा; न रात, रात रही; (दोनों का अस्तित्व एक दूसरे में विलीन होकर) बीच मे (एक नई ही वस्तु) स्वप्न सी (सुन्दर) संध्या पैदा हो गई ।

विशेष टिप्पणी :

(i) कवि ने दिन को उष्णता से युक्त प्रणयी नायक माना है जो रात्रि के वियोग मे विरहाग्नि से सतप्त है। नारी सुलभ शीतलता से युक्त रात्रि नायिका है जो दिन से मिलकर उसके संताप को हर लेना चाहती है । दोनो एक दूसरे को देखते ही गलगला कर ऐसे लिपटे कि अपना अस्तित्व ही खो बैठे ! "लाली देखन मैं गई, मैं ही हो गई लाल"–वाली स्थिति आ गई जो प्रेम की चरम परिणति है । जब तक "मैं" और "तू" का अस्तित्व है तब तक प्रेम कहाँ ! 'अहं' का पूर्ण विलय ही प्रेम का चरमोत्कर्ष है। कवि ने सध्या के समय दिवस और रजनी के इस मिलन द्वारा प्रेम का यही आदर्श आध्यात्मिक रूप प्रस्तुत किया है। बड़ी मौलिक और उच्च कोटि की कल्पना है ।

(ii) दोनों के मिलकर अस्तित्व हीन हो जाने पर तीसरी वस्तु के उत्पन्न होने का भ्रम होना स्वाभाविक ही है परन्तु वस्तुत वह तीसरी वस्तु उन दोनों से भिन्न है नही–केवल मित्रता का आभास मात्र है। इसी से कवि ने उसे 'जजाळ' (कुहक, स्वप्न) कहा है। वैसे भी सध्या-काल क्षणिक ही होता है और शीघ्र स्वप्न सा विलीन हो जाता है। अत उसे 'जजाळ' कहना भी सार्थक है। वह स्वप्न सा आकर्षक भी होता है।

(iii) इसमे दिन' और 'रात' का मानवीकरण हुआ है। तीसरे चरण मे विरोधाभास है। 'साझ बणी जजाल' मे रूपक है।



12

मिलावै थू वाला दिन रैण,
हुलसता हिवडा नेह हिंडाय ।
भला कद होसी वह परभात ?
कलपती चकवी रै चित माय ।

शब्दार्थ

मिळावै . मिलाती है, थू तू, वाला प्रिय, हुलसता हुलसित, हिवडा हृदय, हिंडाय झूले मे झुला कर; कद कब, कळपती कलपती हुई व्याकुल, माय . मे ।

अर्थ

तू दिवस और रात्रि रूपी मिलनातुर प्रणयी-युग्म को (तो प्रवश्य) मिलाती है (और उन्हे) प्रेम के झूले मे झुलाती है (परन्तु विरह वेदना से) व्याकुल चकवी के लिए (यह रात काटनी कठिन हो जायगी) तू ही बता, उसका प्रभात कब होगा ?

'मिलावे थू वाला दिन रैण' का यह अर्थ भी किया जा सकता है कि तू रात-दिन (सदा) प्रेमी-युग्मो को (वाला) मिलाती रहती है ।

विशेष टिप्पणी

(i) सध्या केवल दिवस और रजनी की ही मिलनवेला नही सभी प्रणयी युग्मों के लिए मिलन का सदेशा लेकर आती है परतु कवि का ध्यान एक ऐसी प्रेमी-युग्म की ओर भी गया है जिसके लिए सध्या वियोग का सदेश लेकर आती है, वह है चक्रवाक। सहसा कवि की सहानुभूति उसी की ओर बह चलती है और वह सध्या से पूछ बैठता है कि इस दुखिया चकवी की रात कैसे कटेगी ? उसके हृदय मे प्रभात का प्रकाश कब होगा ! कवि की सारी सृष्टि के साथ सहानुभूति परिलक्षित होती है ।

(ii) चकवी के चित्त में प्रभात' होने की उक्ति मे 'प्रभात' शब्द की व्यजना द्रष्टव्य है, वह केवल प्रात काल का ही सूचक नही है अपितु प्रात काल म उसे प्राप्य मिलनानन्द और उल्लास के प्रकाश का भी व्यजक है । कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है ।

13

अलेखा आख्या री हर जोत,
कियो थें घूघू आख उजास।
अरे थूं वण लिछमी री सैण,
बिसर मत मिनखपणै री वास !

शब्दार्थ :

अलेखा : असंख्य, आख्या री : आँखो की, जोत ज्योति, थें तूं
घूघू : उल्लू (लक्ष्मी का वाहन), उजास प्रकाश, थू तू, वण व
कर, लिछमी लक्ष्मी, सैण आत्मीयजन, मिनखपणै रो मनु
ष्यता का।

अर्थ

(तू) असख्य (लोगो की) आँखो की ज्योति अथवा देखने की शक्ति व हरण कर के (लक्ष्मी के वाहन) उल्लू की आँखो मे प्रकाश भर देती है (सभी तो उल्लू को रात मे दिखाई देता है !) अरी ! तू लक्ष्मी के सा आत्मीयता स्थापित करके उन लोगों को भुला मत जिनमे मनुष्यता क निवास है (अथवा मनुष्य जाति को न बिसार)।

विशेष टिप्पणी

(1) सध्या की रूप माधुरी को सराहने के पश्चात् कवि का ध्यान उस अनुज्ज्वल पक्ष की ओर भी गया है जिसका आभास बारहवें छद मे ह मिल चुका है। कवि ने देखा कि सध्या न केवल चकवी की ही वेदना क कारण बनती है अपितु सारे ससार की दृष्टि का भी हरण कर लेती है साथ ही लक्ष्मी के वाहन उलूक को वह दृष्टि प्रदान कर देती है। स्पष्ट है कि वह लक्ष्मी देवी की चापलूसी कर रही है। अपने युग की पूंजी वाद - विरोधी विचारधारा से प्रभावित होकर कवि उसे चेतावनी देता है कि इस प्रकार समस्त मानव जाति के प्रति अन्याय करना उचित नहीं। अब कवि - कल्पना सामाजिक क्षेत्र मे भी उडान भरने लगी है और वह सध्या पर 'समर्थ' के पक्षपात का सफल आरोप करते हुए जन साधारण के प्रति अन्याय करने से उसे रोकता है। हिन्दी के अधिकाश

छायावादी कवियों की भाँति भाटीजी की कल्पना युग - बोध से विछिन्न होकर आकाश में उडानें नहीं भरती।

(ii) उल्लू जैसे निकृष्ट पक्षी को ज्योति प्रदान कर समस्त मानव जाति को अन्धा बना देने की कल्पना से सन्ध्या का अन्याय प्रबलता से स्पष्ट हुआ है। कल्पना का आधार वास्तविक है, केवल हेतु की कल्पना की गई है। अतः हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।



14

भली थूं साझ सुखा री दैंण,
दाझतै दिनडै री ठाडोल !
नींद री नणदल, सपनां सेज !
परणती सरग परी री खोल !

शब्दार्थ :

थूं तू, सुखा री दैंण सुख प्रदान करने वाली; दाझतै (दग्ध) जलते हुए, दिनडै री, दिन की, ठाडोळ : शीतलता प्रदान करने वाली; नणदल ननद; परणती विवाह करती हुई;सरग परी स्वर्ग की अप्सरा खोळ गोद मे गृहीत उपहार (मिठाई) । राजस्थान मे विवाह के समय वरवधू के सबधी उनकी गोद लड्डू और रुपयो से भरते हैं; उसे 'खोळ भरना' कहते हैं । इसके लिए वे गोद मे अपना आचल या रूमाल फैला कर उसमे लड्डू लेते हैं । उस मिठाई से भरे वस्त्र को भी 'खोळ' ही कहते हैं ।

अर्थ :

हे ! साझ, तू (बहुत) भली (है क्योकि) सभी को सुख देनेवाली है, जलते हुए दिन को शीतलता प्रदान करनेवाली है । तू निद्रा (देवी) की ननद है, स्वप्नो की शय्या है और दुलहन बनी हुई किसी स्वर्ग की अप्सरा की क्रोड मे उसके सम्बधियों द्वारा रखा हुआ उपहार है ।

विशेष टिप्पणी

(1) इस छद मे सध्या के प्रभाव पक्ष की ओर कवि का ध्यान गया है। वह जनसाधारण के लिए सुखद निद्रावस्था की उद्घोषिका बन कर आती है । प्रणयी युग्मो को सयोगावस्था के सभी सुख प्रदान करने वाली है (इसीलिए कवि ने 'सुख' का बहुवचन मे प्रयोग किया है—सुखा री देण' ।)

(II) 'दाझते दिनडै री ठाडोळ मे दिन और सध्या का सुदर मानवीकरण हुआ है । वह जलते हुए 'दिन' को भी शीतल करती है और दिन भ

परिश्रम में रत और सतत श्रमशील लोगों को भी विश्राम देती है। इस पंक्ति से दोनों ही अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं।

(iii) संध्या को 'नींद री नणदल' कह कर कवि ने फिर अपनी कल्पना पर राजस्थानी जनजीवन का रंग चढ़ाया है। नींद यदि नववधू है तो संध्या उसकी शय्या सजाने वाली ननद है क्योंकि ननद ही भावज की शय्या सजाती है।

(iv) संध्या 'सपनों' की शय्या है क्योंकि उसके आते ही सपने जग पड़ते हैं और निद्रामग्न संसार की पलकों पर विचरण करने लगते हैं।

(v) सांध्य-गगन की लालिमा को कवि ने स्वर्ग - परी की 'खोळ' कहा है जो एकदम मौलिक और स्थानीय रंग से पूर्ण कल्पना है। क्षितिज पर फैली लालिमा मानो नव-वधू की गोद पर फैला हुआ लाल आंचल है जिसमें तारों के लड्डू भरे जा रहे हैं।

(v) इस छंद के दूसरे, तीसरे और चौथे चरण में रूपक और पूरे छंद में उल्लेख अलंकार है।



15

हुवो थिर समदर आभौ जाए,
कसा मे घुलै कसूंवल रग ।
निचोयौ साझ-नार जिमि चीर,
दई कै देवत-नैएा सुरग ।

शब्दार्थ

हुवो हुआ, थिर स्थिर, प्रशान्त, समदर समुद्र, आभौ आ
आकाश, जाए जानो मानो, कसां सध्या काल के मेघ ख
कसूंवल लाल, निचोयौ निचोड दिया है, दई दिया है, कै अथ
सुरग अनुराग की लालिमा ।

अर्थ

आकाश रूपी समुद्र मानो स्थिर (शात) हो गया है (और) सध्या
समय क्षितिज पर मडराते छोटे छोटे मेघ-खडों में जैसे किसी ने कसू
(लाल) रग घोल दिया है । (यह ऐसा प्रतीत होता है मानो) स
सुन्दरी ने (स्नान के उपरान्त) अपना (कसूमल) चीर निचोडा है अ
देवताओ की आँखों ने (इन्हें) यह लाल रग प्रदान किया है । (उन्हीं
आँखों के लाल डोरो की यह झाँई है ।)

विशष टिप्पणी

(i) इस छद मे कवि ने सध्याकालीन मेघों की रगीन शोभा का चित्रए कि
है । ये छितरे हुए छोटे छोटे लाल मेघ - खड ऐसे दिखाई देते हैं
किसी सद्य - स्नाता द्वारा अपना लाल चीर निचोडने से टपका हुआ
हो जो जगह जगह बिखरा पडा हो अथवा सद्यस्नाता सध्या सुदरी
सौदर्य को निहारने के लिए लालायित देवताओ की आँखों की ललाई
यह प्रतिबिम्ब हैं ।

(ii) प्रथम चरए मे समदर आभौ मे रूपक, और अतिम दोनो चरएों
सन्देह से पुष्ट उत्प्रेक्षाए हैं । 'साँझ-नार' में भी रूपक है ।

16

चिलकै सोने रा चीलरिया,
वधगी वा रूपाली पाल ।
कू पलो किण रो ढुलियो आज ?
गुदलतो घण असमानी ढाल ।

दाथ

चिळकै चमक रहे हैं, रा के, चीलरिया पोखर, वधगो वध गयी, वा : वह, रूपाळी चादी की, पाळ पाल, कू पळो कज्जलदानी, किण रो किस का, ढुळियो गिर कर विखर गया, गुदळतो गदली या मैली करती हुई, घण अधिक, असमानी नीले रग की ।

थ ·

(पीत मेघ-खडो के चारो ओर से फूटती हुई सूर्य की किरणें और उनके श्वेत किनारो वाले पीत मेघ-खड ऐसे प्रतीत होते हैं मानो) छोटे छोटे सोने के जल भरे गड्डे चमक रहे हो और उनके चारो ओर चादी की पाल (छोटा बांध) हो । (कुछ दूरी पर आकाश मे हल्के श्याम रग के बादल दिखाई देते हैं । कवि प्रश्न करता है कि) यह किस सुन्दरी की कज्जलदानी से बिखरा हुआ काजल है जिसने इस आसमान की ढालू धरती को गदला कर दिया है ।

विशय टिप्पणी

अस्त होत हुए सूर्य की किरणो स क्षितिज के समीप और दूर अ समान म मेघ खडो के कारण नाना प्रकार के आकर्षक दृश्य बन जात हैं । यहा इन्ही मेघ खडो की शोभा कवि ने चित्रित की है । मुख्य अलकार रूप कातिशयोक्ति है । भाषा मे चित्रोपमता और कल्पना म रगीनी है । 'चीलरिया' और 'कू पळो अप्रस्तुत कल्पना को राजस्थानी रग प्रदान करते हैं ।



17

उफणी आडै छाज कठैक ?
उरसा सुगन - चिडी री पाख ।
गेरुआ तीरा पाण पयाण ,
हसला पौढाणा नस नाख ।

शब्दार्थ

आडै आडे (Horizontal), उफणी आडै छाज सूप से उछाल क
बिखेरना, कठैक कहाँ तक, उरसा आकाश, सुगन - चिडी पक्ष
विशेष जिसकी पाखों का रग मटमैला होता है, तीरा पाण किना
से सटी हुई, पयाण चलती हुई, कूदती हुई, हसला हस पक्षी
पैढाणा सो रहे है, नस नाख। गर्दन को शिथिलता-पूर्वक झुका कर

अर्थ

(आकाश मे फैले हुए छोटे छोटे मटमैले मेघ खड ऐसे प्रतीत होते
मानो किसी ने सुगन चिडी (शकुन चिडिया) की (मटमैली) पाखों व
आडे छाज से फटक कर आकाश मे बहुत दूर तक बिखेर दिया हो। गे
रग के इन मेघ-खडों के किनारो से सटकर फूटती हुई (श्वेत रेखा
ऐसी प्रतीत होती हैं मानो) हस अपनी (थकावट से शिथिल) गर्दनो व
(सरोवर के किनारे) डाल कर सो रहे हो।

विशेष टिप्पणी

इस छद के पूर्वार्द्ध मे रुपकातिशयोक्ति और उत्तरार्द्ध मे उत्प्रेक्षा अलका
है। नस नाख' मुहावरे के प्रयोग से विश्राम करते हुए हसों की शिथि
गर्दनो का चित्र सा अकित हो गया है। पाण पयाण' और 'नस नाख
के छेकानुप्रास स छद के सौंदय मे वृद्धि हुई है। इस छद पर राजस्थान
ग्राम्य जीवन की छाप स्पष्ट है।

कापती किरणा बाह पसार,
डूबती जाणे समदर जाय ।
अरे कुण पकडै पुणचौ आज ?
कोचरी बोली यू कुरलाय !

ार्थ

करणां किरणे (सूर्य की), जाणे मानो, समदर समुद्र, कुण : कौन, (णचौ कलाई, कोचरी पक्षी विशेष जो उल्लू के आकार का परन्तु उससे छोटा होता है, कुरळाय व्याकुल होकर।

(डूबते हुए सूर्य की) किरणें (क्षितिज-रेखा पर ऐसी दिखाई देती हैं, मानो समुद्र मे डूबती जा रही है (और इसलिए रक्षा की पुकार करती हुई) वे कांपती हुई अपनी बाँहें पसारे हुए हैं। (इस दृश्य से द्रवित हो कर) कोचरी (चिडिया) दर्दभरी वाणी मे पुकारती है कि अरे ! है कोई (साहसी) जो इन (डूबती हुई किरणो) की कलाई पकडले (अर्थात् इन्हे बचा ले।)

ाप टिप्पणी

(1) क्षितिज रेखा पर डूबते समय सूर्य की रश्मियाँ एक ही बिन्दु से विभिन्न दिशाओ म अपसरित होती दिखाई देती हैं । इसी मनोरम दृश्य का कवि न उत्प्रेक्षा स पुष्ट मानवीकरण द्वारा चित्रण किया है । विभिन्न दिशाओं मे अपसरित किरणों को डूबते हुए व्यक्ति की फैली हुई भुजाओ स उपमित करके कवि ने दृश्य को साकार करने के साथ भावाक्षिप्त भी बना दिया है। सध्या के समय कोचरी की दर्द भरी चीख की भी इस दृश्य स सगति बिठा कर कवि न छद की एकतथ्यता और प्रभावान्विति की रक्षा की है।

) 'अरे कुण पकडे पुणचो आज ?' म प्रयुक्त 'अरे !' के साथ उक्ति का प्रश्नवाची स्वरूप कोचरी के हृदय की परदुःख-कातरता और ससार की निर्ममता पर उसके हृदय म उठी विवशता-जन्य वेदना को साकार करने मे समर्थ है। पद्मावत में सम्बोधन की कुछ ऐसी ही ध्वनि पर तो शुक्ल जी मुग्ध थ 'पिय सो कहहु सदेसरा, ऐ भँवरा, ऐ काग।'

